टंकारा समाचार

(श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट का मासिक पत्र)

अक्टूबर 2023 वर्ष 27, अंक 09 ❑ दूरभाष (दिल्ली): 23360059, 23362110 (टंकारा): 02822-287756 ❑ विक्रमी सम्वत् 2080 ❑ कुल पृष्ठ 16
ई-मेलः tankarasamachar@gmail.com ❑ एक प्रति का मूल्य 20/-रुपये ❑ वार्षिक शुल्क 200 रुपये ❑ आजीवन 1000/-रूपये

आर्यावर्त्त के आदर्श श्रीराम

❑ स्व. क्षितीश वेदालंकार

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम से बढ़कर आर्य संस्कृति का प्रतीक दुर्लभ है। राम आर्यावर्त और भारतीय इतिहास के प्रतिनिधि के रूप में अजस्र प्रेरणा-स्रोत हैं। मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं के जो आदर्श हो सकते हैं, वे भी सर्वोत्तम रूप से मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम में ही घटित होते हैं। राम आदर्श राजा हैं, राम आदर्श पुत्र हैं, राम आदर्श पति हैं, राम आदर्श भाई हैं और राम आदर्श स्वामी हैं। वैदिक धर्म और ऋषियों द्वारा निर्धारित मर्यादाओं का जितने सुन्दर रूप से राम ने पालन किया, उतने सुन्दर रूप से अन्य किसी व्यक्ति ने नहीं किया। इसीलिए राम को **'रामो विग्रहवान् धर्मः'** कहकर सम्बोधित किया गया है। वेद का आदेश है कि **'अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः'** पुत्र पिता के व्रत का पालन करने वाला हो और माता के मन की इच्छाएं पूरी करने वाला हो। अथवा **'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा'**-भाई से भाई द्वेष न करे और बहिन से बहिन द्वेष न करे।' इस प्रकार परिवार में सुख और शान्ति के लिए नैतिक आदर्शों की स्थापना करने वाले जितने भी आदेश वेद में हैं, उन सबका सर्वोत्तम ढंग से पालन करने वाले महापुरुष भी कोई हैं तो श्रीराम ही हैं।

इसीलिए तो हिमालय की कन्दराओं से लेकर विन्ध्य और सह्याद्रि की अधित्यकाओं तक और जह्नुतनया भागीरथी गंगा से लेकर दक्षिण की कावेरी तक सर्वत्र राम-नाम की गूंज है। पंजाब, सिन्धु, कन्याकुमारी और रामेश्वरम् तक पूर्व-पश्चिम उत्तर-दक्षिण के किसी भी प्रदेश में चले जाओ, सर्वत्र राम की स्मृतियां बिखरी पड़ी हैं। भले ही तक्षशिला, लवपुर (लाहौर) और कुशपुर (कसूर) पाकिस्तान में चले गए हों, लेकिन वे स्मारक तो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के और उनके वंशजों के ही हैं।

कवियों और सन्तों ने रामकथा को सम्प्रदायातीत बना दिया है। इसीलिए बौद्धों और जैनों के ग्रन्थों में भी राम-कथा का समावेश है। गोंड-भील आदि शिक्षित- अशिक्षित सभी वर्गों में राम-कथा की धूम है। स्याम, अनाम, जावा, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया और मलयेशिया में भी राम की कथा पहुंची हुई है। मैक्सिको में राम-सीता के नाम से उत्सव मनाया जाता है और राम के ही नाम से मिस्र के राजाओं के नाम रखे जाते हैं। बैंकाक में रामायण-सम्मेलन होता है और मौरिशस में 'गुटका तुलसी रामायण' की एक लाख प्रतियां मंगाकर घर-घर पहुंचाई जाती हैं। इस प्रकार इतिहास में अन्य शायद ही कोई ऐसा महापुरुष हो जो इतने व्यापक रूप से चर्चित हो। राम का कुल 'रघुकुल' कहलाता है। मनु के सात पुत्र थे, जिसकी एक शाखा में भगीरथ, अंशुमान्, दिलीप, रघु आदि हुए और दूसरी शाखा में सत्यवादी हरिश्चन्द्र आदि। वैवस्वत मनु के पश्चात् इस सूर्यवंश की 39 पीढ़ियां बीत जाने पर राम अयोध्या में जन्म लेते हैं। राम के विषय में उनके गुणों का वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि ने लिखा-

रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।
वेदवेदांगतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च तिष्ठितः॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥
स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥

(शेष पृष्ठ 15 पर)

'टंकारा समाचार' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

आओ चलें नेक रास्ते पर

- पदम्श्री डॉ. पूनम सूरी

प्रधान, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति एवम् आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, ट्रस्ट प्रधान महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा (जन्मभूमि)

किसी की सौ बरस की
जिन्दगी से कुछ नहीं होता।
किसी की चार दिन की
जिन्दगी सौ काम आती है।।

कितनी सच्चाई छिपी है उपरोक्त पंक्तियों में -''क्रान्ति'' पिक्चर में भी यही गाया गया है- लम्बी-लम्बी उमरिया का क्या प्यार की इक घड़ी है बड़ी।

जो नेक रास्तों पर चल पड़ते हैं। देश धर्म व जाति की रक्षा के लिये अपना सम्पूर्ण जीवन आहूत कर देते हैं उनके नाम विश्व-क्षितिज पर तारों की तरह सृष्टि के प्रलय तक जगमगाते हैं। श्री राम, श्री कृष्ण, गुरूनानक देव, गुरूगोविन्द सिंह, महर्षि दयानन्द सरस्वती आदि सब। किस किस के नाम गिनाऊँ। भारत तो ऋषि मुनियों व वीरों की कर्म भूमि है।

गुरू गोविन्द सिंह के चारों किशोर बेटे धर्म पर परवान हो गये। दो पकड़े जाने पर दीवारों में चिनवाये गये दो को उबलते तेल के कढ़ाहे में डाला गया उसक समय सब से बड़े बेटे की आयु 18 वर्ष की थी। बाल हकीकत ने मात्र 12 वर्षो की आयु में इस्लाम धर्म को स्वीकार करने से इन्कार कर अपना सिर कटवाया। देश की आजादी पर मर मिटने वाले भगत सिंह मात्र साढ़े तेईस वर्ष के थे जब वह फांसी के फंदे पर झूल गये थे। उनके अन्य साथियों में कोई भी 25 वर्ष की आयु से अधिक नहीं थे।

इन सबकी आयु कोई निर्धारित कर सकता है-नहीं जब तक सूर्य चांद रहेंगे तब तक इनके नाम रहेंगे। आज के युग में मात्र उदाहरण है।

आज चारों ओर हाहाकार है, ईर्ष्या, द्वेष, लालच, हिंसा, बीमारी, लाचारी, अनाचार, पापाचार व अवसाद का हर घर में डेरा है। प्रत्येक मानव इनसे त्रस्त है। चाहे वह गरीब हो या अमीर। प्रश्न उठता है आखिर क्यों? आज जब की, विश्व विकास की चरम सीमा पर है। अपार धन व अनन्त सुख-सुविधाएं है फिर भी मानव रातों की नींद को तरस रहा है। आखिर क्यों-क्योंकि मानव ने अपने स्वाभाविक गुण मानवता को छोड़ दिया है। सत-पथ को छोड़ कुपथ पर चल पड़ा है। नेकियों को छोड़ बदियों का दामन पकड़ लिया है।

सभी नेक भावनाओं का मूल, मात्र वह परमपिता परमात्मा है। उसकी भक्ति अर्थात स्तुति, प्रार्थना व उपासना कर अपने मन व आत्मा को विकारों रहित कर शुद्ध व पवित्र बनाएं। आत्मा में परमात्मा को पाना ही तो परमात्मा की सच्ची भक्ति है। ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा व आस्था के कारण ही उस प्रभु के सभी गुण स्वत: ही मानव मन में आने लगते हैं। जो प्रभु कृपा ही है।

परिवार में बच्चों को भक्ति करना ही ईश्वर की सच्ची पूजा है। इसे घर से प्रारम्भ करो फिर देश से विश्व तक। प्रेम वह सोने की सीढ़ी है जिसके द्वारा मनुष्य स्वर्ग पहुंचता हैं। प्रेम में अद्भुत शक्ति है। इसके विपरीत आज विश्व में हथियारों की होड़ चल रही है। आज मानव मन प्रेम से रीता हो रहा है।

प्रेम से उपजता है त्याग, सेवा, परोपकार व क्षमा। जिस से हम प्रेम करते है उस पर सर्वस्व लुटाने को तैयार हो जाते है Love is God, God is Love.

मानव जीवन तभी सार्थक है जब वह दूसरों के कल्याण व परोपकार में लगा रहता हैं। सच्चा इंसान वहीं है जो दूसरों के सुख के खातिर अपने हितों की परवाह नहीं करता। ऐसे मानव के जीवन में शांति, सन्तोष, पवित्रता, प्रसन्नता, समआदर भाव विनम्रता तथा क्षमाशीलता जैसे दिव्य गुणों का समावेश स्वत: ही हो जाता है। सन्तोष एक ऐसा धन है जो सभी प्रकार की तृष्णाओं को मिटा सकता है। यह सत्य कहां है।

गो धन, गज धन, बाजि धन और रत्न धन खान। जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूली समान।।

कइयों की तृष्णा एक कण से भी मिट जाती है, कइयों की करोड़ों से भी सन्तुष्टि नहीं होती। एक बार महर्षि अपने व्याख्यान में दान महिमा का वर्णन कर रहे थे। सभा समाप्ति पर एक व्यक्ति उनके पास गया और कहा मैं भी औरों की तरह दान करना चाहता हूँ पर मैं अति गरीब जुलाहा हूँ। स्वामी जी ने समझाया अगर तुम ईमानदारी से जितनी रूई ग्राहक से लेते हो उतनी रूई उसे वापस लौटा देते हो तो तुम बहुत बड़े दानी हो। यदि प्रत्येक व्यक्ति ईमानदारी का दान समाज को देना प्रारम्भ कर दे तो देश में ईमानदारी का वातावरण फैल जाएगा, भ्रष्टाचार मिटेगा, एक एक करके बुरे व्यक्ति भी सुधर जाएंगे। आखिर मानव ही तो है। एक जलता हुआ दीपक हजारों लाखों दीपकों को प्रज्ज्वलित कर सकता है।

सभी नेकियां एक दूसरे की पूरक होती है। इनमें औरों के सहारे की आवश्यकता नहीं होती। एक बार महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्य आनन्द को कहा था-अप्प दीपो भव-अपने दीपक स्वयं बनो, रोगी भी तुम हो डॉक्टर भी तुम हो।

ईश्वर उनकी मदद करता है जो अपनी मदद स्वयं करते है। वर्तमान के दूषित वातावरण के कीचड़ में अपने जीवन के कमल खिलाएं और गुन गुनाएं।

इतनी शक्ति हमें देना दाता, मन का विश्वास कमजोर हो न।
हम चलें नेक रास्ते पे, भूल कर भी भूल हो न।।

-पदम्श्री डॉ. पूनम सूरी जी के साथ अनऔचपारिक बैठक में चर्चा के कुछ अंश

❑ उस मनुष्य का जीवन सफल है जो दूसरों से अपने दोषों को सुनकर क्रोध नहीं करे। दोष बताने वाले का उपकार माने कि जिससे दोष सुनने वाला मनुष्य अपने दोषों को दूर करके पाप करने से बचे। **-स्वामी दयानन्द**

माँ का प्रशिक्षण और कर्त्तव्य बोध

अध्यापक, अभियन्ता, चिकित्सक, अभिनेता, संगीतज्ञ, नर्तक, प्रबन्धक सब के लिए योग्य प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। उन्हें विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय पर्यन्त कई प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है। उन्नत हवाई जहाज, टेलिवीजन, कंप्यूटर तथा गाय, घोडा, आम, गेहूँ आदि के विकास हेतु अनुसन्धान किया जाता है। भौतिक योजनायें मनुष्य को आवश्यक हैं, परन्तु जिस मनुष्य के लिये ये सब अभिप्रेत है, उस मनुष्य को श्रेष्ठ बनाने के लिए योजना नहीं बनाई जाती। भगवती वेदमाता ने उदघोष किया है- **"मनुर्भव जनया दैव्य जनम्"**- 'तुम सब आकृति के साथ मनुष्य की प्रकृति को भी अपनाओ। उत्तम मनुष्य हो कर देवताओं को जन्म दो।' कोई जड पदार्थ अथवा मनुष्येतर जीव देवों को पैदा नहीं कर सकता।

संसार के सब मनुष्य माताओं से ही जन्म लेते है। यह कार्य पुरुष के सामर्थ्य से बाहर है। नारी ही सन्तानों की जननी, पोषिका और पालिका है। प्रशिक्षण केन्द्रों में इन्जीनियर, चिकित्सक, प्रबन्धक प्रशिक्षित किये जाते हैं। परन्तु सदाचार, शिष्टाचार और नैतिकता की शिक्षा का एकमात्र प्रशिक्षण केन्द्र माँ है। कहा गया है-गर्भावस्था से लेकर शिक्षा समाप्ति पर्यन्त जो सन्तान माता से निर्मित होती है, वह मातृमान् है। जन्म देने से जननी बन सकती है, परन्तु प्रारम्भिक काल में नैतिक ओर आध्यात्मिक शिक्षादात्री ही माता है। आधुनिक युग में मातृशिक्षा के अभाव से चारों दिशाओं में भ्रष्ट राजनेता, भ्रष्ट सन्यासी, भ्रष्ट न्यायाधीश, भ्रष्ट व्यवसायी, कृषक, सैनिक भर गये हैं। महिलायें मोहग्रस्त और विलासी हो जाने से सन्तानों का मार्गदर्शन करने मे असमर्थ हैं। माँ बनने का प्रशिक्षण विस्मृत-सा हुआ है। **"माता निर्माता भवति"**-यह उक्ति कहीं सुनाई नहीं देती है।

एक बार अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द से एक देवी ने निवेदन किया-'स्वामीजी, मैं अपने पुत्र को विवेकानन्द बनाना चाहती हूँ। उसको किस विश्वविद्यालय में प्रविष्ट कराऊँ? स्वामीजी ने हँस कर उत्तर दिया-'बहन जी! गर्भधारिणी जन्मदात्री माँ की तपस्या से साधु और सदाचारी सन्तान जन्म लेते हैं। इसलिये वह विश्वविद्यालय आप स्वयं हैं।

हे विदुषी माँ। आप उत्कृष्ट अध्यापिका, उपदेशिका और निर्देशिका हैं। हे माँ! हमारे जीवन-पथ को विस्तारित करो। पिता और अध्यापक सन्तानों को शिक्षा देने के पूर्व माँ उनके वर्णोच्चारण और शिष्टाचार की शिक्षा देकर विद्यादात्री की भूमिका प्रस्तुत करती है। शैशवावस्था में माता के अमृत उपदेश से सन्तान जीवन भर प्रभावित रहती हैं। माँ की भाषा उनकी मातृभाषा बनती है। माँ की वाणी उनके लिये महौषधि और अक्षयनिधि है। अमेरिका के प्रथम और यशस्वी राष्ट्रपति जार्ज वाशिंटन ने एक आम सभा में कहा था-'आज मैं जो कुछ भी हूँ, उस का श्रेय मेरी मां को है। मृत्युशय्या में उन्होंने मुझे उपदेश दिया था कि मैं जीवन-भर नशा सेवन न करूँ। उस समय मेरी आयु पंद्रह साल की थी। माँ के उपदेश का मैंने जीवन भर पालन किया।' फ्रान्स के शासक नेपोलियन के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने देशवासियों से पूछा था-"देश के लिये एक सौ सुशिक्षित नारी प्रदान करो, मैं देश का कायाकल्प कर दूँगा।" आदर्श मातृशक्ति ही देश को समृद्धि दे सकती है।

नारी राष्ट्र-यज्ञ की संयोजिका है-कर्त्तव्यनिष्ठ, सदाचारी नागरिक नारी की तप ओर साधना का फल है। यक्ष के प्रश्न के उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा था-माँ भूमि से भी अधिक वंदनीया है। पिता की मृत्यु के बाद माता ही पिता का स्थान ले सकती है परन्तु पिता कभी माता के बाद उसका कर्त्तव्य नहीं निभा सकता।

मदालसा गर्भावस्था में गाया करती थी-'रे गर्भस्थ पुत्र तू शुद्ध है, तु बुद्ध है, संसार-माया से मुक्त है। इन संस्कारों के कारण तीन संतान त्यागी, संन्यासी बन गये पति ने जब कहा कि इस प्रकार वंश कैसे चलेगा? तब चतुर्थ सन्तान अन्य संस्कारों के कारण सर्वगुण सम्पन्न क्षत्रिय हुआ।

राजा उत्तानपाद किसी कारणवश अपनी सन्तान ध्रुव को अपने गोद से अलग कर दिया। रोते हुई पुत्र माता सुनीता के पास गया। माता ने कहा, पुत्र! तुम पितृस्नेह से वंचित हो गये। कोई बात नहीं अब तुम असली पिता, हम सबके परमपिता प्रभु के आश्रय में रहो। जीवन भर सुख-आनन्द पाओगे। माता का उपदेश पालन करके ध्रुव इतिहास में अमर हो गया। माता शकुन्तला ने पुत्र भरत को साहसी, वीर बनाने के लिये बाल्यकाल से जंगल के भयानक पशुओं के साथ युद्ध करने को कहा। कालान्तर में भरत प्रसिद्ध क्षत्रिय बने। नेपोलियन जब गर्भस्थ थे, उनकी माता सेना शिविर में जाकर परेड देखती थी। उस समय उसका रोम-रोम राष्ट्ररक्षा के लिये हर्षित होता था। गर्भावस्था में प्राप्त संस्कार ने नेपोलियन को एक महान योद्धा बनाया। माता सुभद्रा ने वीर अभिमन्यु को, माता जीजाबाई ने वीर शिवाजी का जीवन निर्माण किया था।

गर्भस्थ शिशु कण्ठ स्वर को भी पहचान सकता है, इसका परीक्षण अमेरिका, यूरोप, चीन आदि देशों के मनोवैज्ञानिकों और चिकित्सकों ने किया है। गर्भावस्था के शेष काल में साठ महिलाओं पर परीक्षण किया गया। आडियो टेप द्वारा तीस महिलाओं को अपनी माता का कण्ठस्वर और तीस को दूसरी महिला का कण्ठस्वर सुनाया गया। अपने माता का स्वर सुनते समय गर्भ का स्पन्दन बढ़ गया। अपरिचित महिला के बोलते समय स्पन्दन घट गया।

कुम्हार कच्ची मिट्टी में घड़ा आदि बनाते समय इच्छानुसार पदार्थ प्रस्तुत करता है। मिट्टी सूख जाने से उसमें क्षमता नहीं रहती। उस प्रकार गर्भावस्था और जन्म लेने के बाद पाँच-सात साल तक शिशु का शरीर-तत्व और मनस्तत्व माता की साधना के आश्रय में रहता है।

प्राचीन समाजशास्त्रियों और शिक्षाविदों ने सूक्ष्म दृष्टि से मातृत्व की महत्ता को समझा था। उन्होंने तदनुसार नारीशिक्षा की दिशा निर्धारण किया था। परिणामस्वरूप दीर्घजीवी, बलवान और विद्वान संतति उत्पन्न होने के साथ समाज का चहुँमुखी विकास सम्भव हुआ था।

अजय टंकारावाला

आवश्यक सूचना: टंकारा समाचार इंटरनेट एवम् वट्सअप पर उपलब्ध। सभी सदस्य पाठकों से अनुरोध है कि अपना ई-मेल पता एवम् वट्सअप मोबाइल नम्बर **9560688950** पर **सदस्य संख्या एवम् नाम सहित** भेजे ताकि हम पंजीकृत कर सके जिससे कि आपको उपरोक्त माध्यम से जोड़ा जा सके।

टंकारा ट्रस्ट द्वारा चलाई जा रही गतिविधियों के लिए आप निम्न प्रकार से सहयोग कर सकते हैं

परिवार के एक बालक को गुरुकुल में पढ़ाएं अथवा गुरुकुल के
एक ब्रह्मचारी का वार्षिक व्यय 20,000/- रुपये देवें

❑❑❑

गौ-दान : महा-दान–उपदेशक विद्यालय के ब्रह्मचारियों की पर्याप्त मात्रा में दूध की व्यवस्था हेतु एक गऊदान
करें अथवा 75,000/- रुपये की सहयोग राशि गऊ हेतु देवें।
(तीन व्यक्ति मिलकर भी 25,000/- प्रति व्यक्ति भी दे सकते है।)

❑❑❑

गऊ पालन एवं पोषण हेतु 12,000/- रुपये का हरा चारा एवं
पौष्टिक आहार की व्यवस्था (एक गऊ का वार्षिक व्यय)

❑❑❑

1000/- रुपये की सहयोग राशि देकर स्वामी दयानन्द सरस्वती जन्मभूमि के सहयोगी सदस्य बनें। यह राशि
आपको प्रतिवर्ष देनी होगी। इसलिए अपना पूरा पता अवश्य लिखवायें।
जो दान देवें उसके अतिरिक्त यह 1000/- रूपये राशि अवश्य देवें।

❑❑❑

श्री ओंकारनाथ महिला सिलाई-कढ़ाई केन्द्र की बेटियों द्वारा बनाए गए
सामान को क्रय करके सहयोग कर सकते हैं।

❑❑❑

ब्रह्मचारियों के एक सत्र का भोजन 20,000/- रुपये की सहयोग राशि देकर।

❑❑❑

ऋषि बोधोत्सव पर 1,50,000/- रुपये की सहयोग राशि देकर एक सत्र के भोजन में सहयोग

❑❑❑

20,000/- रुपये की सहयोग राशि प्रति वर्ष किसी एक दिन का (जन्मदिवस अथवा
स्मृति दिवस) ब्रह्मचारियों का भोजन देकर सहयोग कर सकते है।

❑❑❑

ब्रह्मचारियों के पहनने हेतु सफेद कपड़ा एवं दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुएं देकर

**टंकारा ट्रस्ट को दी जाने वाली राशि आयकर की धारा 80 G के अन्तर्गत मान्य है।
एवम् C.S.R. दान प्राप्त करने हेतु पंजीकृत।**

यह दान नकद/चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा **''श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा''** के नाम दिल्ली कार्यालय आर्य समाज (अनारकली) मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 अथवा श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा जिला-मौरबी-363650 (गुजरात) के पते पर भिजवाकर पुण्यार्जन करें। आप सहयोग राशि **खाता न. 4665000100001067, पंजाब नैशनल बैंक, IFSC CODE PUNB0015300** में जमा करा सकते हैं। जमा की गई सहयोग राशि, तिथि एवम् पते की सूचना मो. 09560688950 पर देवें।

–:निवेदक:–

योगेश मुंजाल
कार्यकारी प्रधान

अजय सहगल
मन्त्री (मो. 9810035658)

उपकार्यालय: आर्य समाज अनारकली मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 सम्पर्क: 09560688950 (व्यवस्थापक)

राष्ट्र पुरुष-श्रीराम और माता कैकेयी

❐ स्व. मनुदेव 'अभय' विद्यावाचस्पति

महाभारत में 'आर्य' शब्द के संबंध में इस प्रकार कहा गया है

शान्ततितिक्षर्दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दाता दयालु नम्रश्च आर्यस्याहढ़ मिर्णमी।

पदार्थ-शांतः=शांति से परिपूर्ण। तितिक्ष=अपार सहिष्णु। दान्तः=मन का स्वामी। सत्यवादी= जैसा मन में हो, वैसा ही वाणी से बोले जो बोले तदनुसार आचरण। कर्म करे, सत्यार्थी जितेन्द्रिय=इन्द्र, इन्द्रियों का शासक। दाता=दानशील, दयालु=कृपा और न्याय कारक। नम्रता=सक्षम होने पर भी विनम्र और मीठा व्यवहार करने वाला।

व्याकरण की दृष्टि से ॠ गतौ से' ॠहलोर्ण्यत्' इस सूत्र के अनुसार ण्यत् प्रत्यय करने पर 'आर्य' शब्द बनता है। इसे कुल,' शील, दया, दान, आदि परिभाषित किया जाता है। इस प्रकार उपरोक्त आठ गुणों को धारण करने वाले को आर्य कहा है। यह श्रेष्ठतम है ॠग्वेद 7.63.5 में स्पष्ट कहा है-**इन्द्र वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।** परम पिता परमात्मा का आदेश है-आलसी मत बनो, वैदिक कर्मों के करने कराने वाले बनो। कंजूस, स्वार्थी, पापियों को परे हटा लें, सारे संसार को वेदानुकूल चलाने वाला आर्य, परमेश्वर का भक्त होता है। सारे संसार को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर स्वयं प्रथम श्रेष्ठ आर्य बनो।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम को आर्य श्रेष्ठ पुरुष इसीलिए कहा जाता कि क्षत्रिय कुल (सूर्यवंश) में जन्म लेकर, सम्राट दशरथ के वैभवपूर्ण परिवेश में भी रहकर भी उनमें आर्यत्व के सभी गुण विद्यमान थे। इनकी माता 'कौशल्या' भी आर्य परिवार की सुशील और धार्मिक मनोवृतिं वाली थी। विवाह के पूर्व इन्होंने राजा दशरथ के सम्मुख ॠषिकाओं जैसे विचार प्रस्तुत किये थे। वे प्रेय मार्ग की अपेक्षा श्रेय मार्ग की अनुयायी थी। विवाहित होने के पश्चात भोगवाद को तिलाञ्जलि देकर केवल एक ही संतान को जन्म देकर अपने अभिवचन का निर्वाह किया था। ऐसी ॠषिका सत्य श्रेष्ठ माता का पुत्र अपने श्रेष्ठतम प्रारब्धों के कारण जन्म लेने के पश्चात 'आर्य' ही बनेगा। एक बार प्रसंगवश महर्षि वाल्मीकि कि जी ने घुमक्कड़ नारदजी से सहज ही पूछ लिया-इस समग्र संसार में इन गुणों को धारण करने वाला कौन है? 1. संसार में गुणवान, पराक्रमी, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता और अपने वक्ष में दृढ़ पुरुष कौन है? 2. सदाचार से युक्त, सर्व प्राणियों के कल्याण में तत्पर, विद्वान, सामर्थ्यशाली और देखने में सबसे सुन्दर पुरुष कौन है? जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है? 3. जो तपस्वी तो हो, किन्तु क्रोधी न हो। मन्यु गुणधारक हो। 4. तपस्वी तो हो परन्तु, ईर्ष्यालु न हो। उसके मुख मण्डल पर आभा हो। 5. दया, अक्रोध आदि गुण होते हुए भी जब रोष आ जाये तब जिसके सामने देवजन भी कांपने लगे।

इन पांचों प्रश्नों को सुनकर देवराज नारद भी सोच में पड़े गये। उनके मस्तक पर भी बल पड़ गये। कुछ समय तक मौन रहकर, गहरे चिन्तन के पश्चात नारदजी ने महर्षि बाल्मीकि को यह उत्तर दिया-अयोध्या में इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुआ 'राम' नाम से जो प्रसिद्ध राजा राज्य करता है, वह उन सब गुणों से युक्त है जिनका आपने उल्लेख किया है। हमारे विद्वान पाठकों को यह जानकर आश्चर्य मिश्रित हर्ष होगा कि महर्षि वाल्मीकि ने अपनी 'रामायण' में उपर्युक्त सर्वप्रश्नों का विस्तार से उत्तर दिया है। उन्होंने रामायण संस्कृत भाषा में लिखी है।

वस्तुत: राम विविध व्यक्तित्व धारण करने वाले व्यक्ति थे। उनमें कुछ ऐसे भी महानगुण थे, जो सामान्य राजा या सम्राट में नहीं पाये जाते। वे ऐसे वीतराग व्यक्ति थे, जिन्हें स्थित-प्रज्ञ ही कहा जा सकता है। राज्याभिषेक हेतु बुलाये गये और वन के लिए किये हुए रामचन्द्र के मुख के आकार के संबंध में महर्षि वाल्मीकि ने कहा है-

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न मया लक्षितस्य स्वल्योऽप्याकार विभ्रम।।

अर्थात्-राम का व्यक्तित्व इतना निस्पृह था कि राज्याभिषेक हेतु बुलाये गये और वन के लिए विदा किये हुए रामचन्द्र के मुख के आकार में मैंने कुछ भी असर नहीं देखा। इस श्लोक का महत्व इसलिए भी है कि राज्याभिषेक के समाचार सुनकर राम के मुंह पर न तो विशेष प्रसन्नता, मुस्कारहट तथा क्रांति थी और जब माता कैकेयी ने राजा की ओर से उन्हें चतुर्दश (14) वर्ष के लिए वनवास तथा भरत को राज सिंहासन पर बैठाने की बात कही, तब इन दोनों बातों को सुनने के पश्चात् राम के मुंह मण्डल पर न तो क्रोध, आवेश तथा क्रोध के कारण आंखे लाल-लात दिखाई न पड़ी। साथ ही वन गमन तथा चतुर्दश वर्ष जैसी लम्बी अवधि को सुनकर उन्हें न लोभ सताया और न ही की कीर्ति (चमक) ही कम हुई। उन्होंने अपने दोनों निश्चय पलकें झुकाकर तथा माता कैकेयी को प्रणाम कर राज महल से प्रस्थित हो गये।

कवि महर्षि वाल्मीकी का यह कितना सुन्दर, सूक्ष्म तथा यथार्थ चित्रण है। क्योंकि हृदय के विषाद या प्रसुद की तरंगों के अनुसार ही उसका भाव मुख मण्डल पर तत्काल झलकने लग जाता है। चेहरा ही हृदय का दर्पण होता है।

भारतीय हिन्दी साहित्य तथा संस्कृत ग्रंथों में वाल्मीकि रामायण का इस कारण सर्वाधिक महत्व है कि राम के हजारों वर्ष पूर्व महर्षि अगस्त्य दक्षिण की ओर वैदिक धर्म, भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रचार करने व्दीप-द्वीदपांतरों में गये थे। इतनी लम्बी अवधि के पश्चात राम ने उत्तर से दक्षिण तक, हिमलय से लेकर सुदूर विन्ध्याचल पर्वत-कारामंडल कन्याकुमारी तक भारत को एक करने का प्रयत्न किया था। राम का यह अभियान सामरिक नहीं किंतु सांस्कृतिक था। तत्कालीन भारत से लेकर गोदावरी नाशिक-महाराष्ट्र तक भारतीय संस्कृत विद्यामान थी। इसके पश्चात् इसके दक्षिण में रस-संस्कृति या राक्षस-संस्कृति-भोगवादी संस्कृति और अनार्यसभ्यता व्याप्त थी। रावण, बालि आदि इसके प्रमुख स्तम्भ थे। बालि भोग-विलास में निमग्न होकर अपने अनुज सुग्रीव का शत्रु बन गया था। इधर जटायु आदि छोटे, छोटे वैदिक संस्कृति के अनुयायी थे तथा राजा दशरथ के पुराने मित्र थे।

राम कथा में एक मोड़ कैकयी के कारण आ गया। राम-वन गमन में सीता तथा लक्ष्मण के कारण एक नया अध्याय जुड़ गया। ताड़का और शुर्पणखा सीता के अपहरण मारीच का विशेष सहयोग रहा। राम-रावण के युद्ध के पश्चात लंका का राज्य उसके भाई विभीषण को दे दिया गया। बालि का वध कर उसके भाई सुग्रीव को सौंप दिया। वैदिक संस्कृति साम्राज्यवादी कभी नहीं रही। पीड़ियों की रक्षा कर हटाना पुनीत कर्त्तव्य माना गया है। इसी तारातम्य में हम यहाँ के किसी के संबध में पाठकों को एक नई वैचारिक सामग्री प्रस्तुत कर

रहे है जो कि महत्वपूर्ण है।

वस्तुतः राजा दशरथ की तीनों रानियों में से कैकेयी विशेष प्रतिभशाली थी। वह न केवल कौशलमय अपितु सम्पूर्ण भारत को रक्ष-संस्कृति से रहित, एक सर्व प्रभुत्व सम्पन्न बनाना चाहती थी। इतना ही नहीं 'वह 'आर्यावर्त' को समुन्नत और गौरवपूर्ण राष्ट्र का रूप देना चाहती थी। कैकेयी की राष्ट्र योजना-वह राजा दशरथ की राज्य क्षमता और बुद्धि से परिचित थी। वे रावण तथा बालि से भयभीत रहते थे। उनके राज्य का भविष्य अंधकामय था। कैकेयी कौसल राज्य को सुदृढ़, शुभ-रहित, उन्नति शील तथा सबल बनाना चाहती थी। मुझे राम से अनेक आशाएं थी विश्वामित्र के आश्रमों में उन्होंने अखंड सबल राष्ट्र, शत्रुओं से रहित राष्ट्र तथा बाह्य एवं आन्तरिक सुरक्षा वाला राज्य सुखी प्रजा तथा वैदिक संस्कृति पर आधारित राज्य व्यवस्था स्थापित करने की शिक्षा दी गई थी। ऋषि विश्वामित्र ने उन्हें युद्ध करने की विविध कलाओं से प्रशिक्षित कर दिया था। राम स्वयं ब्रह्म और क्षत्रिय शक्ति के समुन्नय के घोर प्रशंसक थे। त्याग, परिश्रम, तप के पश्चात ही जीवन में सफलता प्राप्त होती है।

महारानी कैकेयी ने 'राम' के सम्मुख सारी स्थितियां बुद्धि मानी सहित प्रस्तुत कर दी थी। राम को तो केवल उनका अभिनय करना था। वे सफल हुए। क्या दशरथ परिवार में कैकेयी एक पहेली थी?

राजा दशरथ तथा राम से संबंधित साहित्य को तटस्थ भाव से पढ़कर चिन्तन करें तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि कैकेयी एक ऐसे परिवार अश्वपति की पुत्री थी, जहां राजकुमारों तथा राज कुमारियों को धर्म, नीति, शुद्ध कला-कौशल तथा रण क्षेत्र में भी उपकार शुद्ध करने की विद्या सिखाई जाती थी। राजा दशरथ से विवाह होने के पश्चात उसे अपने पति के राज्य की रक्षा, उन्नति एवं प्रजा को सुखी बनाने की चिन्ता सदैव बनी रहती थी। वह चारों राज कुमारों, को किशोरावस्था से क्षात्र-धर्म की शिक्षा देना चाहती थी। इसके लिए वह स्वयं कई-कई बार अयोध्या के निकट खुले मैदानों में अस्त्र-शस्त्र-विद्या सिखाती थी। रघुकुल में इसका निषेध था। उन दिनों अयोध्या चारों ओर से राजाओं, वनचरों, हत्यारों तथा वैदिक संस्कृति के विरोधी राक्षसों से घिरा हुआ था। सुदूर दक्षिण में बालि उनका विरोधी थी। उसके ही सहयोग से लंका नरेश रावण की सेनाएं गोदावरी आदि के निकट तक आ पहुंची थी। वनों में निवास कर रहे ऋषि मुनियों के स्वाध्याय, तप तथा यज्ञादि कार्यो राक्षस संस्कृति मानने वाले राक्षस नष्ट कर देते थे। राक्षसों से त्रस्त-ऋषि मुनि राजा-दशरथ से उनकी सभा हेतु आर्त-भाव से निवेदन कर रहे थे। ऐसे गंभीर समय में राजा दशरथ ने कुल गुरु वशिष्ठ जी को सादर आमंत्रित किया। गुरु वशिष्ठ स्वयं राजा के निमन्त्रण की प्रतीक्षा कर रहे थे। राजा का निमत्रण प्राप्त होते ही गुरु वशिष्ठ ने भी ऋषियों के कष्टों तथा राक्षासों के उपद्रव तथा अयोध्या राज्य की सीमा की रक्षा के लिए चिंता प्रकट की। कुल गुरु वशिष्ठ जी ने राजा से उनके दो किशोर राजकुमारों राम और लक्ष्मण को साथ ले जाने, प्रशिक्षित करने तथा राक्षसों से राज्य-सीमा सुरक्षित करने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने विश्वामित्र को सादर आमंत्रण भिजवाया। वे चारों राजकुमार को वन में सैन्य शिक्षा हेतु ले गये।

कैकेयी एक पहेली- नीति के अन्तर्गत राम को वन गमन कराने में उसकी एक दूरदर्शीकीर्ति, अयोध्याराज्य की बाहरी शत्रुओं से रक्षा तथा कालान्तर में राम को राजा बनाकर वैदिक राजनीति के सिध्दान्तानुसार अखंड तथा सर्व प्रभुत्व सम्पन्न राज्य स्थापित करना था। भला, क्या यह चिंतन दोषपूर्ण था? नहीं।

मानवीय मनोविज्ञान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के शुक्ल और कृष्ण पक्ष होते हैं। हमारे मन की यह दुर्बलता है कि हम सदैव शुक्ल की अपेक्षा कृष्ण पक्ष पर विचार कर केवल उस पर दृढ़ हो जाते हैं। मंथरा, कैकेयी आदि के चरित्र-चित्रण पर तटस्थ रहकर विचार करने की आवश्यकता है। राम की अपेक्षा भरत को अयोध्या की बागडोर सौंप देने पर क्या। राम राज्य में दिखाई पड़ने वाली विशेषताएं आज पढ़ने को मिल सकती थी? कैकेयी तो 'भरत' को केवल प्रतीक रूप में राजा बनाने का प्रस्ताव रखा था। यदि भरत राजगद्दी पर आसीन भी हो जाते तो राज्य की सभी व्यवस्था के पृष्ठ भाग में रहकर कैकेयी ही, संभालती। महारानी, कौशल्या और सुमित्रा सो राजमहल की शोभा थी, जिसमें कौशल्या का गुण, कर्म और स्वमाव प्रेय की अपेक्षा श्रेय भाव की ओर ही अधिक था जिसका वर्णन उन्होंने विवाह के पूर्व दशरथ को दिया था। सुमित्रा भी एक आदर्श आर्य पत्नी थी।

- इन्दौर, म.प्र.

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि।। यजु.१/२५/२०

पदार्थ-हे बुद्धिमान् सर्वोत्तम प्रभो! आप सारे जगत् के द्यु लोक के प्रकाश करने वाले और सारी पृथिवी के स्वामी हैं। दयामय जब हम आपकी प्रेमपूर्वक प्रार्थना करें, तब आप सुनकर हमें प्रेमी भक्त बनावें, जिससे हमारा कल्याण हो।

महर्षि दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय टंकारा

हेतु हरियाणा बोर्ड के पाठ्यक्रम के अनुसार 10वीं कक्षा तक

साईस एवं गणित के अध्यापकों की आवश्यकता

सेवानिवृत अध्यापकों को प्राथमिकता दी जायेगी।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें- **आचार्य रामदेव, मो. 9913251448**

आधुनिकता और अंग्रेजी पर्यायवाची नहीं

❒ स्व. वेदप्रताप वैदिक

कुछ लोग यह तर्क देते है कि अंग्रेजी हट गई तो देश के आधुनिकीकरण में बाधा पहुँचेगी। आज देश में जो भी आधुनिकता दिखाई पड़ती है, यह अंग्रेजी के कारण ही है।

ऐसी धारणा इसलिए बन गई कि बहुत से लोगों ने आधुनिकता का ठीक-ठीक मतलब आज तक नहीं समझा है। वे अंग्रेजीकरण को, पश्चिमीकरण को ही आधुनिकीकरण मानते हैं। आखिर आधुनिकीकरण है क्या? अगर इस शब्द पर नजर डाली जाए तो काफी हद तक अर्थ स्पष्ट हो जाता है जो अधुनातन है, बिल्कुल नया है, वह आधुनिक है। अंग्रेजी के 'मार्डनाइजेशन' शब्द की जो लेटिन धातु है। उसका अर्थ है 'बिल्कुल अभी' याने जो अभी-अभी सामने आया है; पुराना नहीं है; वही आधुनिक है।

यह तो हुआ शाब्दिक अर्थ। लेकिन वास्तव में आधुनिकता का मतलब होना चाहिए-प्रकृति पर मनुष्य की विजय, सत्ता के विरुद्ध स्वतन्त्रता का अभ्युदय; अन्धविश्वास के विरुद्ध तर्क का प्रतिष्ठापन और सामान्य दक्षता की अभिवृद्धि। क्योंकि ये सब बातें मनुष्य के सुदीर्घ इतिहास में प्राचीन काल के बजाय दो तीन सौ वर्षो में विशेष रूप से उभरी हैं, अत: इन्हें ही आधुनिक मूल्य या आदर्श कह सकते हैं। ये मूल्य किसी भी जाति या भाषा या देश की बपौती नहीं है। यह संयोग की बात है कि इनमें से अधिकांश मूल्य पहले यूरोप में प्रतिष्ठापित हुए। शायद इसीलिए लोगों को भ्रम हो जाता है और वे यूरोप को आधुनिकीकरण वाला मानने लगते हैं। यूरोप की हर चीज को आधुनिक मानेंगे तो फासीवाद, नाजीवाद, साम्यवादी, अधिनायकवाद जैसी निहायत जंगली और आदिम चीजों को भी आधुनिक और ग्राह्य मानना पड़ेगा।

किसी भी राष्ट्र पर एक विदेशी भाषा को थोपना आधुनिकता के मूलभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध है। आपको एक ठोस उदाहरण देता हूँ। आप एक आधुनिक राज्य किसे कहेंगे? एक आधुनिक राज्य तो वही होगा जिसमें जनता राज-काज में पूरी तरह भाग ले। इसके विपरीत एक सामन्तवादी, दकियानूसी, पोगापन्थी राज्य कैसा होगा? ऐसा होगा कि जिसमें **'कोऊ नृपहोय हमें का हानि।'** जनता को नीति निर्माण में कुछ लेना देना नहीं। राजा की इच्छा ही कानून है या जैसा कि फ्रांस का लुई चौदहवाँ कहा करता था। "मैं ही राज्य हूँ। यह है 17वीं शताब्दी की बात, 18 वीं शताब्दी की बात, 19 वीं शताब्दी की बात। बिल्कुल भी आधुनिक नहीं। यही बात भारत की संसद में आज भी देखी जा सकती है। 547 संसद सदस्यों में से 500 से भी ज्यादा गूँगें बहरों की तरह सदन में बैठे रहते हैं। बहस में भाग नहीं लेते। सिर्फ हाथ उठा देते हैं। ऐसा क्यों होता है। क्या वे बोलना नहीं जानते? क्या अंग्रेजी में बोलना प्रतिष्ठा की बात है जो अंग्रेजी में बोलता है, उसकी सुनी जाती है। लेकिन जो अंग्रेजी भी नहीं जानते और हिन्दी भी नहीं जानते वे क्या करें? जिन करोड़ों लोगों का वे प्रतिनिधित्व करते हैं, उनका नीति निर्माण में कोई हाथ नहीं है। जैसे पुराने जमाने में राजा का दरबार कुछ **'रत्नो'** की सलाह पर चलता था चाहे वे नौ रतन हो या चौबीसों रतन, वैसे ही आज जो अंग्रेजी बोलने वाला रतन है, उसकी बहस से हिन्दुस्तान की संसद चलती है। क्या इसे आप एक आधुनिक संसद कहेंगे? क्या यह अंग्रेजी की मेहरबानी है।"

दूसरा उदाहरण लीजिए। हमारे देश की नीतियाँ अंग्रेजी में बनती हैं। नेतृत्व के शिखर से लुढ़कती हुई नीतियाँ जनता के पाताल तक पहुँचते-पहुँचते या तो नदारद हो जाती हैं अथवा अपना रूप खो देती हैं। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं को या विदेश नीति के वक्तव्यों को हिन्दुस्तान की औसत जनता का कितना बड़ा भाग समझ पाता है। इसके विपरीत अंग्रेजी में बनी इस नीतियों को अमरीका और इग्लैंड का हर गड्ढे खोदने वाला मजदूर भी समझ सकता है। क्या वह हिन्दुस्तान के साथ छल नहीं है। कि ताश के सारे पत्ते आप विदेशियों के सामने तो पसार देते हैं और हमारे देश की जनता से जिसके खून पसीने की कमाई से योजनाएँ चलती हैं, छिपाने की कोशिश करते है। जब तक नीतियों को जनता अच्छी तरह समझेगी नहीं वह सहयोग किस आधार पर करेगी? और इसके विपरीत जनता क्या चाहती है। यह तो भी शासकों को ठीक-ठीक पता चलना चाहिए। अंग्रेजी की अनिवार्य शिक्षा ने करोड़ों बच्चों को दिमागी तौर पर अपाहिज बना दिया है। अंग्रेजी को रटने के चक्कर में बच्चे दूसरे विषयों की पढ़ाई पर भी ध्यान नहीं दे पाते। अंग्रेजी भाषा ने सैकड़ों शब्दों को जस का तस हजम कर लिया है। जैसे पण्डित, गुरु, नबाब, राजा, महावत, चौकीदार, चपाती, चारपाई आदि। भारतीय भाषाओं में भी जरूरत के मुताबिक शब्द आते जाएँगे। इस प्रकार अंग्रेजी को चलाए रखने के लिए शब्दों की कमी का तर्क तो बिल्कुल सतही है।

कमी शब्दों को नहीं, संकल्प की है। यदि अपनी भाषाओं में संकल्प के साथ सारे काम शुरू कर दिए जाएं तो शब्द अपने आप पीछे-पीछे चले जायेगें। जब तक पानी में कूदेंगें नहीं, तैरना कैसे आएगा? यह भी कोई तर्क है कि पहले तैरना सीखे। फिर पानी में कूदो? क्या तैरना हवा में सीखा जाता है? जो भीगने से, डूबने से डरता है, वह तैरना कैसे सीखेगा? अभी लगभग 100 साल पहले तक फिनलैंड के लोग स्वीडी भाषा का इस्तेमाल करते थे। उन्होंने एक दिन तय किया कि वे अपनी भाषा चलायेंगे। बस दूसरे दिन से ही काम शुरू हो गया और आज उसी भाषा के जरिये सारा काम काज अच्छी तरह चल रहा है। बाद के जमाने में रूस में फ्रांसीसी भाषा का दबदबा था। लेनिन ने सत्ता रूढ़ होते ही एक झटके में फ्रांसीसी को खत्म कर दिया। आज रूस में बड़े से बड़ा काम रूसी भाषा में होता है। तन्जारिया और लीबिया में भी यही हो रहा है। लेकिन हमारे शासकों ने अंग्रेजी के मामले में ऐसी नीति अपनाई है, जो कि केवल गुलाम लोग ही अपना सकते हैं।

अंग्रेजी के कुछ प्राध्यापकों ने जो कि इस आन्दोलन के साथ हैं दबे-छुपे मुझसे यह सवाल किया है कि अगर अंग्रेजी हट गई तो हमारा क्या होगा? मैंने उनसे कहा कि आज अनिवार्य अंग्रेजी पढ़ने को गधाहम्माली का काम समझते हैं। जब अंग्रेजी हटेगी तो देश में विदेशी भाषाओं की समान पढ़ाई प्रारम्भ होगी और अंग्रेजी को जो लोग भी पढ़ेंगे, वे उसी सम्मान और स्नेह के साथ पढ़ेगें, जिसके साथ कि वे आज जर्मन या फ्रांसीसी पढ़ते हैं। दूसरा अंग्रेजी के हटने के बाद देश में हजारों कुशल अनुवादकों की जरूरत होगी। जो अध्यापक घानी के बैल की तरह 30-30 साल तक एक ही तरह की पुस्तकों को रटाते रहते हैं। उन्हें नित नई पुस्तकों और साहित्य के अनुवाद का अवसर मिलेगा। बौद्धिक क्षितिज का विस्तार होगा और आमदनी भी बढ़ेगी। अंग्रेजी तो वे जानते ही हैं, यदि दूसरी विदेशी भाषाएँ भी सीख लेंगे तो वे अधिक उपयोगी आदमी बन सकेंगे। इन्हीं लोगों को अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन में सबसे अधिक सक्रिय होना चाहिए।

-प्रेस एन्कलेव, साकेत, नई दिल्ली

आयुर्वेद राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित हो

❒ डॉ. बिजेन्द्र पाल सिंह

आयुर्वेद ऋग्वेद का उपवेद है इसमें समस्त आयु का ज्ञान है। जीवन से सम्बन्धित कोई विषय ऐसा नहीं जो आयुर्वेद में न हो आज आयुर्वेद के महाविद्यालयों में भी चिकित्सा से सम्बन्धित विषयों की शिक्षा दी जाती है जिसमें शल्प (सर्जरी) काय चिकित्सा (मैडिसिन), शालाक्य अर्थात् आफ्थैल्मोलोजी व ई.एन.टी. बाल रोग (पैडियेट्रिक्स), स्त्री रोग एवं प्रसूति तन्त्र (गाइनी एवं मिड वाइफरी), स्वस्थवृत (सोशियल एवं प्रीवैन्टिव मैडिसिन, रोग विज्ञान एवं विकृति विज्ञान (क्लिनिकल मैडिसिन एवं क्लिनिकल पैथौलॉजी) रस शास्त्र एवं भैषज्य कल्पना (फार्मेसी) द्रव्यगुण (मैटीरिया मैडिका) क्रियाशरीर (फिजियोलॉजी), रचना शरीर (एनाटोमी) पढ़ाए जाते है। पदार्थ विज्ञान, त्रिदोष, अष्टांग संग्रह चरक व सुश्रुत संहिता तथा योग जैसे समस्त विषयों का विस्तृत अध्ययन कराया जाता है। प्रयोगात्मक कार्य शवच्छेदन, रोग निदान चिकित्सा आदि का अध्ययन होता है। आयुर्वेद की विद्या अपने में पूर्ण है। आज आवश्यकता है इस पद्धति के महत्व को समझने की। सरकार व समाज को इसकी और ध्यान देना चाहिए।

यह प्राचीन चिकित्सा प्रणाली है। हमारे पूर्वज इसके प्रयोग से ही रोगों से निवृत होते थे। रामायण में वर्णन है जब लक्ष्मण के घायल होने से मूर्च्छा आती है तो सुषेण वैद्य ने हिमालय से संजीवनी बूटी लाने को कहा था। हनुमान जी तब पर्वत से बूटी लाए थे। लक्ष्मण की मूर्च्छा ठीक हो गई थी। युद्धों में घायलों की चिकित्सा आयुर्वेद द्वारा ही की जाती थी। शल्य चिकित्सा भी की जाती थी। सुश्रुत को शल्य चिकित्सा का जनक कहा जाता हौ। ईसा से 620 वर्ष पूर्व, सुश्रुत संहित लिखी गई जिसमें कैटरेक्त अर्श से लेकर मस्तिष्क तक की शल्य चिकित्सा का वर्णन है। सुश्रुत का यह ज्ञान अरब आदि देशों से होता हुआ बाहर गयां अरब में इसका अनुवाद कर साश्रुत अल हिन्द लिखी गई। 19वीं सदी में हेसलर ने लेटिन में तथा मूलर ने जर्मन में अनुवाद किया।

आयुर्वेदिक चिकित्सा सुलभ व सस्ती है। ईश्वर ने सर्वत्र वनस्पति वृक्ष श्रुप लता आदि के रूप में दी है जिनके गुण, कर्म प्रभाव भिन्न है। विभिन्न रोगों में औषधि के रूप में प्रयोग की जा सकती है। हमारे चारों ओर जो भी द्रव्य है औषधि में प्रयुक्त हो सकते हैं पज्य कर्म बटी रस चूर्ण के रूप में औषधियों कोई दुष्प्रभाव नहीं छोड़तीं जड़ी बुटियाँ के लिए कहीं कोई मैडिकल स्टोर खुलवाने की आवश्कता नहीं प्रकृति में वन जंगल वाग बगीचा खेत आदि में ही आसानी से उपलब्ध हो सकती है।

यही चिकित्सा पद्धति थी जब यह भगवान राम, भगवान कृष्ण हुए और अब तक चक्रवर्ती शासक होते रहे। शूरवीर योद्धा महाराणा प्रताप, राजा सांगा वप्पा रावल जेसे तेजस्वी बलवान शौर्यवान वीर पुरुष हुए। यही चिकित्सा पद्धति उस समय अपनायी जाती थी।

आयुर्वेद, आत्मासात्म्य है, दुष्प्रभाव न होने से हानिरहित है। प्राचीन समय से सामान्य व निर्धन वर्ग से लेकर राजा महाराजाओं व आज के समय मंत्रियों वैज्ञानिकों धनाद्य वर्ग तक प्रयोग में सर्वप्रिय चिकित्सा प्रणाली है तथा सर्वाधिक विश्वसनीय भी है, लोकप्रिय है, जन-जन हेतु उपयोगी है। धनाद्यों की कोठियाँ से लेकर आदिवासियों वनवासियों द्वारा भी अपनायी जाने वाली चिकित्सा प्रणाली है। मनुष्य के जन्म से लेकर अन्त समय तक कार्य में आने वाली चिकित्सा है।

पशु पक्षियों के रोगों में भी हितकारी है। प्राचीन काल से भी प्रयुक्त होती थी तथा आज भी पशुओं की चिकित्सा में उपयोगी है पशु पालक कृषक आदि वनस्पति एवं आयुर्वेदिक औषध द्वारा पशुओं की चिकित्सा करते है। यही नहीं वन्य जीव स्वयं स्वभावतः वन्य औषधियों को रोगानुसार खाकर चिकित्सा कर लेते व स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर लेते हैं।

आयुर्वेद के गुणों का वर्णन करने बैठे तो अनेक ब्रहद् पुस्तकें भर जाएगी। आयुर्वेद का उद्देश्य भी सर्वश्रेष्ठ है।

स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्,
आतुरस्य रोग प्रशनम् च (चरक)

अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा स्वस्थ व्यक्ति रोग ग्रस्त हो जाय तो उसके रोग की चिकित्सा करना यह आयुर्वेद का प्रयोजन है।

स्वास्थ्य की परिभाषा भी आयुर्वेद में अति उत्तम है।

समदोष, समाग्निश्च समधातु मलः क्रियाः
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ्य इत्यभिधीयते।

अर्थात् सब ठीक होते हुए भी जन आत्मा मन व इन्द्रियां भी प्रसन्न हों तभी रोगी स्वस्थ कहा जा सकता है।

ऐसी चिकित्सा पद्धति जो पूर्णतः वैज्ञानिक है मानव के साथ सात्म्य है, सुलभ व हितकारी प्रभावशाली है, इसे राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित करना चाहिए। सरकार को चाहिए कि आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित किया जाए।

शल्य चिकित्सा का जन्म ही आयुर्वेद से हुआ है। शल्य के पिता सुश्रुत है, शल्य आयुर्वेद का ही अंग है। राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित करने से समस्त मानव जाति का उपकार होगा। आज की महंगी व खर्चीली चिकित्सा से दूरधनी व निर्धन सभी को लाभ होगा। आयुर्वेद का विकास होगा सभी का कल्याण होगा।

- गली नम्बर 2, चन्द्रलोक कॉलोनी, खुर्जा-203131

पाठकों के लिए सूचनाः

टंकारा समाचार के पाठकों को सूचित किया जाता है कि वे फेसबुक पर टंकारा समाचार पेज के लिंक **www.facebook.com/tankarasamachar** पर जाकर समाचार पढ़ सकते हैं अथवा प्रिन्ट निकाल सकते हैं।

आज पितृत्व समय की कसौटी पर?

❑ डॉ. आर.के. चौहान

ओ3म् स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये।

उक्त ईश प्रार्थना में याचक संतान अपने 'अग्नि' रूप परम पिता परमेश्वर से अपने लालन-पालन के लिए अपेक्षित सुख सुविधाओं के साथ-साथ उसके अनुग्रह की कल्याण कारिणी प्रार्थना कर रही है। बहुत ही सुन्दर ढंग से मनुष्य और ईश्वर के सन्तान एवं पिता सम्बन्ध से बालक साधिकार अपने लिए अभिलाषित गुण, कर्म, स्वभाव एवं पदार्थो की कामना करता हुआ उसकी प्यार भरी गोद में वात्सल्य आनन्दातिरेक हेतु बैठने को मचल रहा है। भला इसके बाल हठ को पिता कैसे अनदेखा कर दे? उसे तो वह पुकार ही 'अग्ने' अर्थात् ज्ञानस्वरूप कह कर रहा है और इतना ही क्यों? वह इस अबोध बालक का पिता अर्थात् पालक जो ठहरा। संतान की सम्यक ईच्छापूर्ति और पालन करना पिता के लिए अपेक्षित है। तभी तो स्नेह, सुरक्षा और कल्याण की अभीष्ट सिद्धि का विश्वास बालक के भोले चित को पिता के अंङ्क की ओर अनायास खींच रहा है। मन्त्र में उधृत विषय याचक की परमात्मा से मात्र प्रार्थना ही नहीं बल्कि मानवीय सम्बन्धों का एक मार्मिक विवेचन भी है अर्थात् जगत में पिता और संतान अथवा पुत्र के व्यवाहारिक सम्बन्धों के लिए मार्ग दर्शन। या यों कहिए पितृत्व हेतु आवश्यक मानदण्डों का सजीव वर्णन!

सर्व प्रथम पिता को पालक अर्थ पाने हेतु 'अग्नि' यानि की ऊर्जावान तथा ज्ञानवान होना आवश्यक है। पिता शब्द केवल वैज्ञानिक भाषा का बॉयोजोलिकल रिलेशनशिप नहीं दर्शाता अपितु रक्त-सम्बन्ध के साथ-साथ अन्य अपेक्षाएं भी लिए हुए है। जहां पुरुष का सन्तानोत्पत्ति हेतु पौरुष शारीरिक स्वास्थ्य पर आधारित है जिसके लिए सात्विक आहार, विहार और विचार आवश्यक हैं वहीं उत्तम ज्ञान प्राप्ति, अच्छे मानसिक, बौधिक एवं संवेदन सम्पन्न स्वास्थ्य के बिना सम्भव नहीं। तभी वैदिक आश्रम व्यवस्था में ब्रह्मचर्य आश्रम को सुखद, स्वस्थ जीवन की नींव कहा गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम की संयम, साधना, तप एवं ज्ञानार्जन की भट्ठी में तपा हुआ सोना, कुन्दन बन कर सही मानव वंश परम्परा का वाहक बनने का अधिकारी होता है। शायद इसीलिए ब्रह्मचारी को आदित्य संज्ञा भी दी गई है क्योंकि वह शक्ति-ऊर्जा एवं ज्ञान-प्रकाश का पुञ्ज होता है। इसी 'अग्नि' और 'आदित्य' सम्बन्ध से संध्या के मनसा परिक्रमा अंग में साधक 'रसिता' अर्थात् जड़ता और अज्ञानता के बन्धन से छूटकर ज्ञानपूर्वक जीवन पथ पर अग्रसर होने पर संकल्प प्रातः सायं प्रतिदिन दोहराता है। **मत्वाकर्माणि सीव्यति**-मननशील होकर पुरूषार्थी होना ही तो मानव की मनुष्य होने की पहचान देता है।

मन्त्र में पिता अर्थात् पालक की दूसरी पहचान उसके 'सूपायन' होने में निहित है। पालनार्थ पिता पर निर्भर संतान अपनी अभिलाषित वस्तुओं के लिए तो पालनकर्ता-पिता की ओर ही आशाभरी दृष्टि से देखती ही देखती है, बाल हठ से जिद करके भी इन भौतिक पदार्थो को पिता से अर्जित कर लेती है। उनके जीवन निर्माण के लिए आवश्यक एवं वांछित गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ 'सुनु' अबोध बालक नहीं जानता। अपितु ज्ञानवान एवं प्रबुद्ध पिता उसके भावी विकास का समुचित प्रबन्ध करे, अपने पुरुषार्थ और विवेक से। बालक में निहित क्षमताओं और सम्भावनाओं को पहचान कर उन्हें विकसित करने अथवा करवाने में प्रयत्नशील और सहायक होना पिता के लिए अपेक्षित है। विद्या और ज्ञान का प्रतीक 'यज्ञोपवीत' ग्रहण करते समय उसने संकल्प भी तो लिया था। पितृ-ऋण चुकाने का अर्थात् समाज और राष्ट्र को स्वस्थ, सभ्य एवं सुसंस्कृत सन्तान सौंपने का। **मातृमान्, पितृमान, आचार्यवान् पुरुषोवेद**-अज्ञानी पिता ऋषि ऋण चुकाने में भी चूक जाएगा तो पिता की संज्ञा की सार्थकता कहां रह पाएगी?

अनुव्रता पितु पुत्रो......... के वेद आदेश अनुसार यदि वह व्रतों अर्थात् सत्य-संकल्पों का धनी बन कर अपनी संतान के लिए एक आदर्श पिता नहीं बनता तो उसकी सन्तान से उसका अनुव्रती अर्थात् सत्य-संकल्प अनुगामी होने की अपेक्षा कैसे की जाएगी? सामाजिक मान सम्मान अर्जित कर पिता के नाम को यशस्वी कैसे बना पाएंगे वे?

सचस्वा नः स्वस्तये। पिता का तीसरा कर्त्तव्य सन्तान को कष्ट-कलेशों और विघ्न-बाधाओं से बचा कर मंगलमय परिवेश तथा कल्याण कारक अवसर और परिस्थितियां प्रदान करना है। संवेदनशील होकर उनकी कोमल, विमल भावनाओं को महत्व देकर अपना स्नेह, प्यार, दुलार उनपर उंडेलना तथा उनको स्वाभाविक परिवेश में पनपने का अवसर प्रदान करना भी तो वांछित है। वे इंजीनियर, डॉक्टर, अध्यापक, वैज्ञानिक, जज, नेता, विशिष्ठ अफसर अथवा धन-सम्पदा, पद प्रतिष्ठा सम्पन्न बड़े कहे जाने वाले लोग बनें किन्तु उससे भी पहले संवेदनशील, जागरूक, ईमानदार, कर्त्तव्यनिष्ठ मानव अवश्य बनें।

जरूरी है सामर्थ्य सम्पन्न, प्रबुद्ध, प्रगतिशील, सत्य संकल्पी पिता के संरक्षण में प्रतिभावान, विकासशील, संवेदनशील नई पीढ़ी का सृजन हो जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व की गुणवत्ता बढ़े और एक उर्ध्वमुखी स्वस्थ समाज का निर्माण हो।

वर्तमान मानव ज्ञान का परिष्कार कर बुद्धि बल से भौतिक जगत में अद्वितीय कीर्तिमान स्थापित कर चुका है। किन्तु पारस्परिक व्यवहार में आत्मवत व्यवहारिक मानवीय सोच से हटकर केवल व्यक्तिगत सुख भोग तक सीमित हो रहा है। पारिवारिक एवं सामाजिक सरोकार नगण्य हो गए हैं। जिससे उसके वृद्ध माता-पिता वृद्धाश्रमों की धरोहर बन गए और छोटे बालक डे केयर सेन्टरस तथा नौकर नौकरानियों के रहमों कर्म पर बिलबिला रहे हैं।

अभिभावक-संतान सम्बन्धों की पवित्रता को व्यक्ति अर्थ प्रधान भोगवाद की बलिवेदि पर बेरहमी से कुचल, मसल दिया जा रहा है। ईश्वर पुत्र मानव प्रकृति का दास बनकर रह गया है। यह विद्रूपता कहां से आई? अर्थ प्रधान युग के भोगवादी उपभोक्ता ने दौलत की अन्धी दौड़ में वेदादेश को भुलाकर 'पिता' बनने के क्रम में महती चूक कर दी। परिणाम यह हुआ कि वह अपने बड़ों और छोटों, दोनों के प्रति अपने कर्त्तव्यों से मुंह मोड़ बैठा। भावी समाज का स्वरूप क्या होगा? एक बड़ा प्रश्न मुंह बाएं उत्तर मांग रहा है।

-274/7, नवनीत नगर, अम्बाला शहर (हरियाणा)

❑ मनुष्य शरीर, मन, इंद्रियों से जितने भी अच्छे बुरे कर्म करता है। उसे उन सबका फल सुख-दुःख के रूप में अवश्य ही मिलता है। परमात्मा की न्याय व्यवस्था के अनुसार बुरे कर्मो के फल किसी भी प्रकार से क्षमा नहीं हो सकते हैं। दुःख भोगना ही पड़ेगा।

વેદ એટલે જ્ઞાન.

સત્ય ૧ વેદ એટલે જ્ઞાન.

'વેદ' શબ્દનો અર્થ 'જ્ઞાન' થાય છે. વેદ શબ્દ મૂળ ધાતુ 'વિદ' કે જેનો અર્થ 'જાણવું' થાય છે, તેમાંથી આવ્યો છે. સર્વવ્યાપી અને સર્વજ્ઞ ઈશ્વરે વેદનું જ્ઞાન શ્રુષ્ટિ સર્જન સમયે સમગ્ર માનવમાત્રના કલ્યાણ માટે આપ્યું હતું.

સત્ય ૨ વેદ એ માત્ર "પુસ્તક" નથી.

વેદ એટલે શાશ્વત જ્ઞાન. વેદ એટલે સર્વકાલિક અને સાર્વભૌમિક જ્ઞાન.

જેમ કોઈ વ્યક્તિને ચિત્ર સ્વરૂપે જોવી હોય તો એનો ફોટોગ્રાફ કામમાં આવે છે, એવી જ રીતે જયારે વેદ જ્ઞાનને શ્રવણ-સંબંધી બનાવામાં આવે છે ત્યારે આ જ્ઞાન શબ્દમય હોય છે. ઉદાહરણ તરીકે મંત્રોચ્ચાર. જ્યારે આ જ્ઞાનને નેત્ર-સંબંધી બનાવવામાં આવે છે ત્યારે આ જ્ઞાન દ્રષ્ટિમય હોય છે. ઉદાહરણ તરીકે વેદ ગ્રંથો.

બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો, વેદ નિત્ય જ્ઞાન છે. આ જ્ઞાનને ધ્વનિમાં દર્શાવવાનો શ્રેષ્ઠ રસ્તો છે મંત્રોચ્ચાર અને અક્ષરોમાં દર્શાવવાનો શ્રેષ્ઠ રસ્તો છે 'વેદ સંહિતાઓ.'

આજનાં સમયમાં આ અક્ષર જ્ઞાનનો ઉપયોગ કરી વેદને સમજવામાં ઘણી સરળતા રહે છે.

સત્ય ૩ વેદ સંહિતાઓ "મંત્રો"નો સંગ્રહ છે.

વેદ સંહિતાઓ મંત્રોનો સંગ્રહ છે. વેદ સંહિતાઓને મુખ્યત્વે ચાર ભાગમાં વિભાજીત કરવામાં આવી છે.

- **ઋગ્વેદ, યજુર્વેદ, સામવેદ, અથર્વવેદ**

વેદોની ઋચાઓ "મંત્ર' કહેવાય છે. વેદ સિવાયના અન્ય સંસ્કૃત સાહિત્યોની ઋચાઓ 'શ્લોક' કહેવાય છે. વેદ મંત્રોમાં સમાવિષ્ટ વિષય વસ્તુમાં તો શું, વેદ મંત્રોના ઉચ્ચારણમાં પણ કોઈ પ્રકારનો ફરફાર થઇ શકતો નથી. આથી કોઈ સામાન્ય વ્યક્તિ વેદ મંત્રોના ઉચ્ચારણ પર ધ્યાન આપ્યાં વગર ભલેને વેદ મંત્રોનો પાઠ કરતો હોય, પણ દરેક મંત્રોના દરેકે દરેક શબ્દંશનું ઉચ્ચારણ એક વિશિષ્ટ પદ્ધતિથી થાય છે. જો તમે વેદ મંત્ર સંહિતાને ધ્યાનથી જોશો તો તમને અક્ષરોની પાછળ અને ઉપર કેટલાંક ચિન્હો કે માત્રાઓ જોવા મળશે. આ ચિન્હો અને માત્રાઓ વેદ મંત્રોના ઉચ્ચારણની ખાસ રીત દર્શાવે છે.

સત્ય ૪ વેદનું જ્ઞાન સૌ પ્રથમ ચાર ઋષિઓને મળ્યું.

શ્રુષ્ટિના આરંભમાં ઈશ્વરે ચાર ઋષિઓના અંતઃકરણમાં વેદોનું જ્ઞાન પ્રગટ કર્યું. આ ઋષિઓમાં તેમના પૂર્વ જન્મના કર્મોને કારણે ઉત્તમ સંસ્કારોનું નિર્માણ થયું હતું અને એટલે જ તેઓ આ જન્મમાં વેદોનું જ્ઞાન ગ્રહણ કરવામાં અને પછી અન્ય મનુષ્યોને વેદોની શિક્ષા આપવામાં સર્વસમર્થ અને યોગ્ય હતા.

શ્રુષ્ટિ સર્જન અને વિનાશનું ચક્ર નિરંતર ચાલતું જ રહે છે. આથી જયારે નવી શ્રુષ્ટિનું સર્જન થાય છે ત્યારે વેદ જ્ઞાનને આત્મસાત્ કરવા માટે અને તેનો પ્રચાર પ્રસાર કરવા માટે જે ઉત્તમ જીવાત્માઓ હોય છે તે જીવાત્માઓના હૃદયમાં ઈશ્વર વેદનો પ્રકાશ કરે છે.

આ સૃષ્ટિના સર્જન સમયે જે ચાર ઋષિઓના હૃદયમાં ઈશ્વરે વેદનો પ્રકાશ કર્યો હતો તે આ પ્રમાણે છે:

અગ્નિ ઋષિ – ઋગ્વેદ, વાયુ ઋષિ – યજુર્વેદ, આદિત્ય ઋષિ – સામવેદ, અંગીરા ઋષિ – અથર્વવેદ

સત્ય ૫ વેદનું જ્ઞાન ચાર ઋષિઓના અંતઃકરણમાં પ્રકટ થયું.

મંત્રો, મંત્રોના અર્થ અને ઉચ્ચારણ – એમ એકસાથે વેદનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન સૌ પ્રથમ આ ચાર ઋષિઓને મળ્યું. આપણી અજ્ઞાનતા અને સીમિત બુદ્ધિને કારણે આમ માની લેવું કદાચ આપણાં માટે શક્ય નથી. પણ જીવાત્મા જ્યારે ઈશ્વરના સાનિધ્યમાં હોય છે ત્યારે પૂર્ણતાની આવી આદર્શ સ્થિતિમાં જ્ઞાન, ભાષા અને ઉચ્ચારણ એક બીજાથી અલગ ન રહી એકાકૃત થઈ જાય છે.

જેમકે, બાળક જયારે મંદ હાસ્ય આપીને પોતાની માતાને "માં" કહીને સંબોધે છે ત્યારે માતા માટે સંબોધાયેલો "માં" શબ્દ, શબ્દનો અર્થ, તેનું ઉચ્ચારણ, તેની ભાષા, અને તે સમયે અનુભવાતો માતૃત્વનો ભાવ એકબીજાથી અલગ ન રહી એકાકૃત થઈ જાય છે. આ જ રીતે જ્યારે મન નકારાત્મક વૃત્તિઓથી ખાલી થઇ ઈશ્વરમાં સ્થિર થાય છે ત્યારે ઈશ્વરીય જ્ઞાનની (વેદ) ભાષા, અર્થ અને ઉચ્ચારણનો અનુભવ એક સાથે થાય છે. શ્રુષ્ટિ સર્જન સમયે આ ચાર ઋષિઓ પણ આવી જ ઉન્નત (ઈશ્વરમાં સમાંધિષ્ટ) અવસ્થામાં હતા અને આથી જ તેઓને વેદ મંત્રો, મંત્રોના અર્થ અને ઉચ્ચારણનું જ્ઞાન એક સાથે થયું. આ જ્ઞાન અને ઉચ્ચારણના આધારે અન્ય મનુષ્યોને વેદોની શિક્ષા આપવા માટે આ ઋષિઓએ સૌ પ્રથમ ભાષાના નિયમો બનાવ્યા. આમ ભાષાની ઉત્પત્તિનું મૂળ પણ વેદમાં જ છે.

श्रद्धाञ्जलि

गुजरात की गतिशील आर्यसमाज जामनगर के मंत्री श्री महेश भाई पटेल का देहावसान हो गया है।
आप आर्यसमाज द्वारा संचालित आर्यविद्या सभा के भी मंत्री थे।
तदोपरांत जामनगर की कई सारी सामाजिक गतिविधियों से सक्रिय रूप से जुड़े थ।
आपकी स्मृति में श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट के अंतर्गत महर्षि दयानन्द संस्कृत उपदेशक महाविद्यालय में विशेष यज्ञ किया गया।
सच्चिदानन्द प्रभु दिवंगत आत्माको शान्ति प्रदान करे

महर्षि दयानन्द सरस्वती का दार्शनिक चिन्तन

❒ ब्रह्मचारी मोहन आर्य (श्रुतबन्धु)

जब इस भारत देश में अविद्या अन्धकार के बादल छाये हुए थे, अनेकों कुरुतियाँ फैली हुई थीं। भारत देश अज्ञानता के समुद्र में डूबता जा रहा था। गुरु विरजानन्द सदृश महानुभाव चिन्तित थे कि अब इस भारत देश का उद्धार कौन करेगा, ऐसे विकट संकटों में 12 फरवरी 1824 को गुजरात राज्य के टंकारा ग्राम में श्री कर्षण जी तिवारी के घर ऐसा सत्पुत्र सूर्य उदय हुआ जिसने गुरु विरजानन्द के सपनों को साकार करते हुए इस भारत देश को अविद्या अन्धकार आदि भयानक परिस्थितियों से बचाया। कवि मेधाव्रत जी ने ठीक ही कहा है–

अविद्यातिध्वान्तं दिशि दिशि ततं चेतसि नृणाम्,
तमोभिस्तान्तानां श्रुतिरविकराक्रान्तहृदयः।
द्विजालीशाली यो ह्यमृतमयगोभिर्दलितवान्,
दयानन्द वन्दे सकलजगदानन्दनविधुम्॥

निश्चय ही जिस दयानन्द ने वेद रूपी सूर्य कि किरणों से अपने हृदय को व्याप्त किया और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों में शोभा पाकर अमृत भरे किरणों रूप मुक्ति प्रवचनों से सर्वत्र अंधकार से ढके हुए नर नारियों के चित्त में फैले हुए अविद्या अंधकार को विनष्ट किया उस सम्पूर्ण जगत् को आनन्दित करने वाले चंद्ररूप दयानन्द की मैं प्रशंसा व उन्हें नमन करता हूं।

ऋषि दयानन्द सरस्वती आज भी हमारे हृदय में ब्रह्मवित्, वेदवित्, धर्मवित् एवं दर्शनवित् हैं। विश्व में ऋषि जी की प्रतिष्ठा अत्यधिक रूप से समाज सुधारक के रूप में देखी जाती है। ऋषि जी ने समाज का सुधार किस प्रकार किया, अगर इसका मूल कारण देखें तो दयानन्द जी के दार्शनिक विचार ही थे। स्वामी दयानन्द जन्मजात दार्शनिक थे। इस कारण नहीं कि वे प्रारम्भ से उदासमुख थे अपितु इस कारण कि भावी दार्शनिक की भाँति बाल्यकाल से उनकी आत्मा में जीवन की जटिल समस्याओं का हल खोजने की ललक भी थी, वे उन समस्याओं का बौद्धिक हल ही नहीं चाहते थे, वे तो इसमें अन्तर्निहित सत्य का साक्षात्कार चाहते थे। इसी प्रयोजन से उनके जीवन में बचपन में शिवलिंग के ऊपर चूहे चड़ना, चाचा एवं बहन की मृत्यु हो जाना ऐसी घटनाएँ घटी, जिनके कारण ऋषि जी 1846 को सत्य की खोज में निकल पड़े और गुरुवर विरजानन्द दण्डी जी से शिक्षा प्राप्त की। गुरु–दक्षिणा में दण्डी जी ने मांगा कि आर्ष विद्या के द्वारा मानव उन्नति को प्रशस्त करो। उस भयंकर अवनति के काल में दयानन्द ने अनुभव किया कि जहां अन्य श्रेष्ठतायें अवनति के मार्ग में जा रही हैं वहीं दर्शन विद्या के साथ भी घोर अन्याय हो रहा है।

सर्वप्रथम दर्शन शब्द का अर्थ क्या है। दार्शनिक विद्वानों ने दर्शन शब्द की परिभाषा निम्न प्रकार से की है–**दृश्यन्ते ज्ञायन्ते याथातथ्यत आत्मपरमात्ममनो बुद्धीन्द्रियादयोऽतीन्द्रियाः सूक्ष्मविषया येन तद् दर्शनम्।** अर्थात् जिससे, आत्मा, परमात्मा, मन, बुद्धि, इन्द्रियों आदि सूक्ष्म विषयों का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, उसको दर्शन कहते हैं। साहित्यालोक में नास्तिक एवं वैदिक इन दो विभागों में विभक्त दर्शन नामसे अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। वैदिक दर्शनों के मध्य न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त इन छः का परिगणन होता है।

वैदिक दर्शनों की प्रथम सबसे बड़ी विशेषता उनका व्यावहारिक पक्ष है। उनका उद्देश्य है नाना प्रकार के दुःखों से पीड़ित मनुष्यों को राग–द्वेष अविद्या से छुड़ाकर मोक्ष की प्राप्ति करा देना।

वैदिक दर्शन की दूसरी विशेषता है–आशावाद! दुःखमय वर्तमान से असन्तोष हुए बिना सुखमय भविष्य की कल्पना दुराशामात्र ही है। इस जगत् पर दृष्टि पात करने पर विवेकी जन इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह संसार नितान्त दुःखमय है। इस दुःख का कारण द्रष्टा और दृश्य का संयोग है। इस दुःख को दूर करना है और दुःख को दूर करने के लिए मार्ग खोजना है। इस प्रकार वैदिक दर्शन वर्तमान दशा से असन्तोष प्रकट कर उसके सुधारने का प्रयन्त करता है।

वैदिक दर्शन की तीसरी विशेषता है–नैतिक व्यवस्था में विश्वास। मनुष्य जो कर्म करता है, उनका लोप नहीं होता अपितु उन कर्मों से एक अपूर्व की सृष्टि होती है। यही अपूर्व फलोत्पत्ति का प्रधान कारण है। न्याय–वैशेषिक में इसी अपूर्व को अदृष्ट की संज्ञा दी गई है।

वैदिक दर्शन की चौथी विशेषता है–कर्मसिद्धान्त। मनुष्य जो भी कर्म करता है, उसका नाश कभी नहीं होता तथा जिस फल को हम भोग रहे हैं, वह पूर्वजन्म में किये हुए कर्म का ही फल है। कर्म–सिद्धान्त को स्वीकार कर मनुष्य जहाँ एक ओर पाप करने से बच जाता है, वहीं दूसरी ओर शुभ कर्मो के अनुष्ठान से अपने आगामी जीवन को उच्च दिव्य एवं महान् बनाया जा सकता है।

वैदिक दर्शन की पांचवी विशेषता है–मोक्षमार्ग का निर्देश। संसार में बन्धन का कारण है अविद्या। अविद्या से बन्धन होता है और ज्ञान से मुक्ति। जीवन यापन के दो मार्ग है प्रेय और श्रेय। श्रेय मार्ग मनुष्य के मंगल का मूल है। दर्शनकार इस मंगल मार्ग पर आरूढ़ रहता है।

वैदिकदर्शन में मध्यकालीन वाचस्पतिमिश्र, उदयनाचार्य, गौणपाद, बल्लभाचार्य, शंकराचार्य आदि ने आचार्यो के सम्प्रदाय–प्रवाद की द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि मान्यताओं को पुष्ट करते हुए भाड्दर्शनों को एक दूसरे का विरोधी, एकांणि विषय वाला बना दिया था। ऐसा माना जाता था कि वैशेषिक परमाणुवाद एवं असत्कार्यवाद का प्रतिपादक है सांख्य गुणवाद तथा सत्कार्यवाद का पोषक है और अनीश्वरवादी है, वेदान्त ब्रह्म की माया अर्थात् विवर्त्त का जंजाल है, मीमांसा कर्मकाण्ड और न्याय वस्तुवादी दर्शन है। परन्तु स्वामी दयानन्द जी उपरोक्त सम्प्रदायवाद से यत्किंचित् भी सहमत नहीं हुए और उलझे हुए दर्शनों पर समस्त विश्व के समक्ष स्पष्टता के साथ अपना विशिष्ट चिन्तन रखते हुए सत्यार्थप्रकाश के तृतीय व अष्टम समुल्लास में कहते हैं–'दर्शनों में विरोध नहीं अपितु वे तो एक दूसरे के पूरक हैं। सृष्टिविद्या के भिन्न–भिन्न छः अवयवों का छः शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इनमें कुछ भी विरोध नहीं। सृष्टि का जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसा में, समय की वैशेषिक में, उपादान कारण की न्याय में, पुरुषार्थ की योग में तथा तत्त्वों के परिगणन की व्याख्या सांख्य में और निमित्त कारण जो परमेश्वर है उसकी व्याख्या वेदान्तशास्त्र में है, इससे कुछ भी विरोध नहीं दार्शनिक शिरोमणि महर्षि दयानन्द सरस्वती इस विषय में लिखते हैं-जैसे एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का एक–दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है, वैसे ही सृष्टि–विद्या के भिन्न–भिन्न छह अवयवों का छह शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इनमें कुछ भी विरोध

नहीं। जैसे घड़े के बनाने में कर्म, समय, मिट्टी, संयोग-वियोगादि का पुरुषार्थ, प्रकृति के गुण और कुम्भकार कारण हैं, वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसा में, समय की व्याख्या वैशेषिक में, उपादान कारण की व्याख्या न्याय में, पुरुषार्थ की व्याख्या योग में, तत्त्वों के अनुक्रम से परिगणन की व्याख्या सांख्य में और निमित्त कारण जो परमेश्वर है, उसकी व्याख्या वेदान्त शास्त्र में है। इससे कुछ भी विरोध नहीं है। जैसे वैद्यक शास्त्र में निदान, चिकित्सा, औषधदान और पथ्य के प्रकरण भिन्न-भिन्न कथित हैं परन्तु सबका सिद्धान्त रोग की निवृत्ति है, वैसे ही सृष्टि के छह कारण हैं। इनमें से एक-एक कारण की व्याख्या एक-एक शास्त्रकार ने की है। इसलिए इनमें कुछ भी विरोध नहीं।

आगे चलकर सृष्टि-प्रकरण में ऋषिवर लिखते हैं-विरोध उसको कहते हैं कि एक कार्य में एक ही विषय पर विरुद्धवाद होवे। छह शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार है-मीमांसा में-ऐसा कोई भी कार्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्म-चेष्टा न की जाए। वैशेषिक में-''समय लगे बिना बने ही नहीं। न्याय में उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता। योग में विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाए (तो नहीं बन सकता)। सांख्य में-तत्त्वों का मेल न होने से नहीं बन सकता, और वेदान्त में-बनानेवाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके। इसलिए सृष्टि छह कारणों से बनती है उन छह कारणों की व्याख्या एक-एक ही एक-एक शास्त्र में है। इसलिए उनमें विरोध कुछ भी नहीं। जैसे छह पुरुष मिलकर एक छप्पर उठाकर भित्तियों पर धरै वैसे ही सृष्टि-रूप कार्य की व्याख्या छह शास्त्रकारों ने मिलकर पूरी की है। जैसे पाँच अन्धे और एक मन्द-दृष्टि को किसी ने हाथी का एक-एक देश बतलाया। उनसे पूछा कि हाथी कैसा है उनमें से एक ने कहा खंभे जैसा, दूसरे ने कहा सूप जैसा, तीसरे ने कहा मूसल जैसा, चौथे ने कहा झाडू जैसा, पांचवे ने कहा चौंतरा जैसा और छहे ने कहा काला-काला चार खंभो के ऊपर कुछ भैसा-सा आकारवाला है। इसी प्रकार आज कल के अनार्ष नवीन ग्रन्थों को पढ़ने और प्राकृत भाषावालों ने ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर नवीन क्षुद्र बुद्धिकल्पित संस्कृत और भाषाओं के ग्रन्थ पढ़कर एक-दूसरे की निन्दा में तत्पर होके झूठा झगड़ा मचाया है। इनका कथन बुद्धिमानों के वा अन्य के मानने योग्य नहीं।

ऋषि दयानन्द सभी दर्शनों को ईश्वरवादी मानते हैं और कहते हैं जगत् का ईश्वर निमित्त कारण है, उपादान नहीं, जीव ब्रह्म अलग-अलग हैं, मुक्ति से पुनरावर्तन होता है आदि। अशेषशेमुषी सम्पन्न महर्षि दयानन्द दर्शन शास्त्र को विश्व के समक्ष अद्भुत ढंग से प्रस्तुत करते हैं। महर्षि जी ने अपने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में दर्शनों के प्रमाण देकर फिर से दर्शनों को शुद्ध रूप से प्रस्तुत किया। ऋषि जी ने ग्रन्थों में दर्शनों के कुछ प्रमाण इस प्रकार है-

मंगलाचरणं शिष्ठाचारात् फलदर्शनाच्छुतितश्चेति। सांख्य दर्शन अथातो **ब्रह्मजिज्ञासा चतुष्टयसाधनसंपत्यनन्तरं ब्रह्म जिज्ञास्यम्। वेदान्तदर्शन प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। योग दर्शन अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्वच्छेषवत्सामान्यातोदृष्टंच। न्याय दर्शन रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी। वैशेषिक दर्शन अथातो धर्मजिज्ञासा अथेत्यानन्तर्ये वेदाध्ययनानन्तरम्। मीमांसा दर्शन।**

दयानन्द की दृष्टि में धर्मका दार्शनिक स्वरूप- यतोऽभ्युदयानिः श्रेयससिद्धि स धर्मः वैशेषिक दर्शन 1.1.2 जिससे अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति होती है, वह धर्म है। दयानन्द जी इस सूत्र का भावार्थ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोक्तविषय में इस प्रकार प्रकट करते हैं- **यस्याचरणादभ्युदयः सांसारिकमिष्टसुखं सम्यक् प्राप्तं भवति, येन च निःश्रेयसं पारमार्थिकं मोक्षासुखं च, स एवं धर्मो विज्ञेयः। अतो विपरीतो ह्यधर्मश्च।।** जिसका आचरण करने से संसार में उत्तम सुख और निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है, उसी का नाम ध र्म और उससे विपरित अधर्म होता है।

दयानन्द की दृष्टि में दर्शनाधारित सत्य का स्वरूप- महर्षि जी सत्य को सिद्ध करने के लिए सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक में लिखते हुए प्रस्तुत करते हैं कि मेरा इस ग्रंथ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहता है जो सत्य है उसको सत्य जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना मैंने सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाए। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है।

एक प्रेरणा परिवार के एक बालक को गुरुकुल में पढ़ाएं
अथवा गुरुकुल के एक ब्रह्मचारी का वार्षिक व्यय देवें

अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक महाविद्यालय टंकारा, जहां इस समय 110 ब्रह्मचारी अध्ययनरत हैं, जिन्हें वैदिक मान्यताओं के प्रचार एवं कर्मकाण्डीय संस्कारों हेतु तैयार किया जाता है। आज की आवश्यकता है कि सुयोग्य धर्माचार्यों की संख्या अधिक से अधिक हो। आप सभी दानी महानुभावों से प्रार्थना है कि अपनी आने वाली पीढ़ी को वैदिक संस्कारों से ओत-प्रोत करने हेतु इन ब्रह्मचारियों के एक वर्ष के अध्ययन का व्यय दान स्वरूप ट्रस्ट को दें। यह ऋषि ऋण से उऋण होने में आपकी आहुति होगी। **एक ब्रह्मचारी का एक वर्ष का अध्ययन/वस्त्र/खानपान का व्यय 20,000/- रुपये है।** आपसे प्रार्थना है कि अपनी ओर से अथवा अपनी संस्थाओं की ओर से कम से कम एक ब्रह्मचारी के अध्ययन व्यय की सहयोग राशि **'श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा'** के नाम चैक/ ड्राफ्ट केवल खाते में दिल्ली कार्यालय के पते पर भिजवाकर पुण्यार्जन करें। **टंकारा ट्रस्ट को दी जाने वाली राशि आयकर से मुक्त है।**

निवेदकः- योगेश मुंजाल (कार्यकारी प्रधान) **अजय सहगल** (मन्त्री)

Benefits of Chanting Gayatri Mantra

❑ **Arun Kumar Gupta**

We meditate on that Isvara's Glory who has created the Universe, who is fit to be worshipped, who is the embodiment of Knowledge and Light, who is the remover of all sins and ignorance. May He enlighten our intellects."

What is that enlightenment? Now you have Deha-Atmabuddhi, a Buddhi that makes you to identify yourself with the body, to mistake the body for Soul. Now you are praying to the blessed Mother of the Vedas – Gayatri, to bestow on you a Suddha-Sattva-Buddhi which will help you to realise "Aham Brahma Asmi"-"I am Brahman." This is an Advaitic meaning of Gayatri. Advanced students of Yoga may take up this meaning: "I am That Supreme Light of lights which gives light to the Buddhi or intellect."

In the Gayatri Mantra there are 9 names, viz., 1. Om, 2. Bhuh, 3. Bhuvah, 4. Svah, 5. Tat, 6. Savituh, Varenyam, 8. Bhargah and 9. Devasya.

Through these nine names the God is praised. 'Dheemahi signifies worship of or meditation on the God; 'Dhiyo Yo Nah Prachodayat' is a prayer. Herein there are five halts or stops, viz., 'Om' is the first stop; 'Bhur Bhuvah Svah' the second; 'Tat Savitur Varenyam' the third; 'Bhargo Devasya Dheemahi the fourth; and Dhiyo Yo Nah Prachodayat' the fifth.

While chanting Gayatri Mantra, you should stop a little at every stop or halt.

Savita is the presiding Deity of the Gayatri Mantra, Fire (Agni) is the mouth, Visvamitra is the Rishi and Gayatri is the metre. This Mantra is recited during the investiture of sacred thread, practice of Pranayama and Gayatri Mantra. What Gayatri is, the same is Sandhya, and what Sandhya is, the same is Gayatri. Sandhya and Gayatri are identical. He who meditates on Gayatri, meditates on the Supreme God of the Universe.

A man can repeat the Gayatri Mantra mentally, In all states, even while lying, sitting, walking, etc. There is no sin of commission or omission of any sort in its repetition. One should thus perform Sandhya-Vandana with this Gayatri Mantra three times every day, in the morning, noon and evening. It is the Gayatri Mantra alone that can be commonly prescribed for all the Hindus. The God commands in the Vedas: "Let (one) Mantra be common to all"-"Samano Mantrah." Hence the Gayatri should be the one Mantra for all the Hindus. "The secret lore of the Upanishads is the essence of the four Vedas, while Gayatri with the three Vyahritis is the essence of the Upanishads." He is the real Brahmana who knows and thus the Gayatri. Without its understands thus the knowledge he is a Sudra, though he may be well-versed in the four Vedas.

Benefits of Gayatri Mantra – Gayatri is the mother of the Vedas and is the destroyer of sins. There is nothing more purifying, on the earth as well as in the heaven, than the Gayatri. The chanting of Gayatri Mantra brings the same fruit as the recitation of all the four Vedas together with the angas. This single Mantra repeated three times a day brings Kalyana or Moksha. It is the supreme Mantra of the Vedas. It destroys all sins. It bestows splendid health, beauty, strength, vigour, vitality and magnetic aura in the face (Brahmic effulgence).

Gayatri destroys the three kinds of Taapa or pain. Gayatri bestows on one of the four kinds of Purushartha, viz., Dharma (righteousness), Artha (wealth), Kama (desired objects) and Moksha (Liberation or freedom). It destroys the three Granthis or knots of ignorance, Avidya, Kama and Karma. Gayatri purifies the mind. Gayatri bestows on the Upasaka Ashta-Siddhis. Gayatri makes a man powerful and highly intelligent. Gayatri eventually gives Liberation or emancipation from the wheel of birth and death.

The repetition or Japa of Gayatri brings the Darsana of Gayatri and finally leads to the realisation of the Advaitic Brahman or Unity of Consciousness (Tanmayata, Talleenata, Tadrupata, Tadakarata) and the aspirant who asked for light from Gayatri, in the beginning, sings now in exuberant joy: "I am that Light of lights that gives light to the Buddhi."

May Gayatri, the Blessed Mother of the Vedas, bestow on us right understanding, pure intellect, right conduct and right thinking! May Gayatri Mantra guide us in all our actions! May Gayatri Mantra deliver us from the Samsaric wheel of birth and death! Glory! Glory unto Gayatri, the Creatress, the Generatrix of this Universe!

Glory of Gayatri Mantra –Brahma milked out, as it were, from the three Vedas, the letter A, the letter U, and the letter M, formed by their coalition the triliteral monosyllable, together with the three mysterious expressions, Bhuh, Bhuvah and Svah, or earth, sky and heaven.

From the three Vedas, again, the God the creature incomprehensibly exalted, successfully milked out the three measures (feet) of that ineffable text, beginning with the word Tat, and entitled Savitri or Gayatri.

The three great immutable words, preceded by the

triliteral syllable and followed by the Gayatri which consists of three measures, must be considered as the mouth or the principal part of the Veda.

Whoever shall repeat day by day for three years without negligence, that sacred text, shall hereafter approach the divine essence, move as freely as air and assume an ethereal form.

The triliteral monosyllable is an emblem of the supreme; the suppression of breath with the mind fixed on God is the highest devotion; nothing is more exalted than the Gayatri; a declaration of truth is more excellent than silence.

All rites ordained in the Veda, oblations to fire, and solemn sacrifices pass away; but that which does not pass away, is declared to be the syllable OM, thence called Akshara Brahman. All the words should be repeated slowly without mutilation and with Akshara-Suddhi. You must not be hasty in the performance of Gayatri Mantra.

The teachings of four Vedas which are accompanied with the appointed sacrifice are not equal, though all be united, to a sixteenth part of the sacrifice performed by a repetition of the Gayatri. By the sole repetition of the Gayatri a Brahmana attains beatitude, let him perform or not perform any other religious act.

"Verily, all this creation is Gayatri. Speech is Gayatri; by speech is all this creation preserved. The Gayatri is verily composed of four feet, and possesses six characteristics. The creations constitute the glories of Gayatri. The Brahman, i.e., the being indicated in the Gayatri, is verily the space which surroundeth man. This space is the same as the one within man"

"Verily, man is Yajna (sacrifice). The first twenty-four years of his life constitute the morning ritual, for the Gayatri includes 24 letters and it is the Gayatri through which the morning ritual is performed"

The Brahma-Gayatri Mantra has twenty-four Aksharas. So, one Gayatri-Purascharana constitutes the repetition of Gayatri Mantra 24 lakh times. There are various rules for Purascharana. If you repeat the Mantra 3,000 times daily, you should keep up the number daily all throughout till you finish the full 24 lakhs. Cleanse the mirror of the Manas (mind) of its Mala (impurities) and prepare the ground for the sowing of the spiritual seed.

Sri Pandit Madan Mohan Malaviyaji is a votary of Gayatri- Purascharana. The success in his life and the establishment of a grand Hindu University at Banares is all attributable to his chanting of Gayatri Mantra and the benign grace of the Blessed Mother Gayatri.

Only Yoga-Bhrashtas and pure-minded persons can have Darsana of Gayatri by doing only one Purascharana. As the minds of the vast majority of persons in this Kali Yuga are filled with various sorts of impurities, one has to do more than one Purascharana according to the degree of impurity of the mind. The more the impurities, the greater is the number of Purascharanas.

Methods to chant Gayatri Mantra are listed as :-

1. After the Purascharana is over perform Havan and feed Brahmins, Sadhus and poor people to propitiate the God.

2. Those who wish to do Purascharana may live on milk and fruits. This makes the mind Sattvic. One will derive great spiritual benefits.

3. There are no restrictions of any kind when you repeat a Mantra with Nishkama Bhava for attaining Moksha. Restrictions or Vidhis come in only when you want to get worldly gains, when you do the chantings with Sakama Bhava.

4. When a Purascharana of Gayatri is done on the banks of the Ganga, underneath an Asvattha tree or the Pancha-vrikshas, Mantra-Siddhi comes in rapidly.

5. If you repeat Gayatri 4000 times daily, you can finish the Purascharana in one year, seven months and twenty-five days. If you do the Japa slowly it will take at least 10 hours to finish 4000 daily. Anyhow, the same number should be repeated daily.

6. You must observe strict Brahmacharya when you do Purascharana.

7. The practice of Akhanda Mouna (unbroken silence) during Purascharana is highly beneficial. Those who are not able to practise this, can observe full Mouna for a week in a month, or only on Sundays.

8. Those who practise Purascharana should not get up from the Asana or the pose till they finish the fixed number. Also, they should not change the pose.

9. Counting can be done through Maala, fingers or watch. Count the exact number that you can do in one hour. Suppose you can repeat the Gayatri-Mantra 400 times in one hour, then Japa for ten hours means 10 X 400 4000. There is more concentration in counting the number through watch.

10. There are three varieties of the forms of Gayatri, for meditation in the morning, noon and evening. But many meditate on the five-faced Gayatri alone throughout the day.

In nutshell, all the human beings should chant the Gayatri Mantra in the wee hours of the morning to attain salvation.

- President Arya Samaj Dayanand Marg City Chowk, Jammu.

(पृष्ठ 1 का शेष)

(पृष्ठ 1 का शेष)

(वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड)

अर्थात् वे जीवलोक के रक्षक हैं, धर्म का पालन करने वाले हैं, वेद-वेदांग के तत्त्व को जानने वाले हैं, धनुर्वेद में पारंगत हैं, सब शास्त्रों के अर्थों के मर्मज्ञ हैं, स्मृतिशाली और प्रतिभाशाली हैं, सब लोगों में प्रिय हैं, साधु-स्वभाव हैं, अपनी आत्मा में कभी दीनता का समावेश नहीं होने देते, कार्यकुशल हैं, जिस तरह नदियां समुद्र के पास जाती हैं, उसी तरह वे सज्जनों के लिए सदा सुलभ हैं, वे आर्य हैं, सब पर समदृष्टि रखते हैं, हमेशा प्रसन्नचित्त रहते हैं, गम्भीरता में समुद्र के समान और धैर्य में हिमालय के समान कौसल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले श्रीराम सभी प्रकार के गुणों से समन्वित हैं। वाल्मीकि रामायण में काफी विस्तार से राम के गुणों का वर्णन है, हमने संक्षिप्त दिग्दर्शनमात्र कराया है।

आर्य संस्कृति के प्रतीक : मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम के गुण में तीन संस्कृतियां स्पष्ट दिखाई देती हैं-एक आर्य-संस्कृति, दूसरी वानर-संस्कृति और तीसरी राक्षस-संस्कृति। सम्भवतः आदिकाल में एक ही मानव-वंश रहा होगा, परन्तु उसके बाद कालक्रम से उनके आचार-विचार और रहन-सहन में परिवर्तन आता गया और वे विभिन्न संस्कृतियों के पोषक बन गए। खास बात यह है कि ये तीनों संस्कृतियां वैदिक धर्मावलम्बी हैं। तीनों में वेदों के अध्ययन की परम्परा है। इन तीनों संस्कृतियों के तीन प्रमुख केन्द्र हैं-आर्य-संस्कृति का केन्द्र अयोध्या, वानर-संस्कृति का केन्द्र किष्किन्धा और राक्षस-संस्कृति का केन्द्र लंका। वानरों की पूंछ आदि की कल्पना करके पौराणिक जगत् ने अपने कल्पना-विलास का ही परिचय दिया है, जबकि वानर भी अयोध्या के निवासियों की तरह वैसे ही मनुष्य थे जैसे आर्य लोग थे। वानर का अर्थ बन्दर नहीं, बल्कि वन में रहने वाला है। वे वन्य जातियां थीं, जो वनों और पहाड़ों में रहती थीं। आज भी देश की काफी बड़ी संख्या जंगलों और पहाड़ों में रहती है। भ्रम से हम उन्हें पाश्चात्य लेखकों के अनुकरण पर आदिवासी कहने लगे हैं, जबकि सही अर्थ में उन्हें 'वनवासी' या 'गिरिजन' कहा जाना चाहिए। वनवासी और वानर का एक ही अर्थ है। जिस प्रकार वानर बन्दर नहीं थे, उसी प्रकार राक्षस भी अमनुष्य नहीं थे। वे भी अयोध्या-निवासी आर्य जनों के समान ही सामान्य मनुष्य-मात्र थे। हां, इन तीनों की संस्कृतियों में अन्तर था।

जहां तक भौतिक समृद्धि का प्रश्न है, वाल्मीकि रामायण के कथनानुसार न किष्किन्धा अयोध्या से कम थी और न ही लंका। बल्कि लंका का तो भौतिक समृद्धि के कारण नाम ही 'सोने की लंका' पड़ गया। अन्तर भौतिक समृद्धि में नहीं, अपितु आचार-विचार और संस्कारों में स्पष्ट अन्तर है। वानर और राक्षस दोनों मदिरापायी हैं, जबकि अयोध्या में मदिरापान का वर्णन नहीं मिलता। बाली और सुग्रीव का आपसी भ्रातृ-कलह 'वानर' संस्कृति का ही प्रतीक हो सकता है। अयोध्या में इस प्रकार के भ्रातृ-कलह की कल्पना हम नहीं कर सकते। बाली द्वारा सुग्रीव की पत्नी का अपहरण और बाली की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी तारा का सुग्रीव द्वारा वरण वानर-संस्कृति की ही विशेषता है, आर्य-संस्कृति की नहीं। जहां तक राक्षसों का प्रश्न है, वे तो निरे विषलम्पट थे ही। विभीषण और रावण के कलह के रूप में भ्रातृ-कलह भी वहां विद्यमान है और रावण द्वारा पराई स्त्रियों के अपहरण की तो अनेक घटनाएं हैं।

इन तीनों राज्यों में राजतन्त्र की प्रथा है। तीनों जगह मन्त्रिपरिषद् है, परन्तु रावण अपनी मन्त्रिपरिषद् की सलाह मानने की बजाय स्वेच्छाचारिता की ओर अग्रसर है। इसी स्वेच्छाचारिता ने विभीषण को अलग कर दिया। किष्किन्धा और लंका में वेदाध्ययन के साथ ब्राह्मणों का भी अस्तित्व है। किन्तु आर्य, वानर और राक्षस-संस्कृति में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि आर्येतर संस्कृतियों में आश्रमों की परम्परा नहीं। आर्य राज्य में सर्वत्र ऋषियों के आश्रम हैं, उनमें वेदाध्ययन के साथ-साथ आर्य-संस्कृति के प्रसार की चिन्ता है; ऋषि लोग तप और स्वाध्याय मे निरत रहकर यज्ञ-याग में लगे रहते हैं, जबकि राक्षस उनके यज्ञों में विघ्न डालने को ही अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण समझते हैं। आर्य लोग स्वभाव से अहिंसा-प्रिय हैं परन्तु राक्षसों की ज्यादती के कारण अन्त में स्वयं ऋषि ही अयोध्या के आर्य राज्य के राजकुमार को शस्त्र-ग्रहण के लिए प्रेरित करते हैं और लंका-विजय की योजना बनाते हैं। इस प्रकार वानर और राक्षस-संस्कृति के मुकाबले में आर्य-संस्कृति की विशेषता को देखें तो उसका सार यह निकलता है कि आर्य लोग तप, त्याग और वैदिक विधान के अनुसार वर्णों और आश्रमों की मर्यादा का पालन करते हुए जीवन को निरन्तर उन्नत, उन्नततर बनाते हुए आदर्श बनने का प्रयत्न करते हैं, जबकि वानरों और राक्षसों में जीवन के नैतिक आदर्शों का वैसा प्रसार नहीं। राक्षस लोग तो निश्चित रूप से 'खाओ-पियो-मौज उड़ाओ' की भोगवादी संस्कृति के प्रतीक हैं और आर्य लोग त्यागवाद की संस्कृति के, जबकि वानर-संस्कृति इन दोनों के बीच में विद्यमान है। आर्यों के त्यागवाद में मर्यादित भोगवाद है और जीवन में धर्मपूर्वक अर्थ और काम का सेवन करते हुए मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है, जबकि राक्षसों का भोगवाद निर्मर्याद है, उसमें त्यागवाद का कहीं लेश नहीं। वे हिंसा के माध्यम से अपने राज्य का विस्तार करना चाहते हैं। आर्य-संस्कृति के अनुयायी अहिंसा का हथियार विफल हो जाने पर ही हिंसा का आश्रय लेते हैं और तब दुष्ट को दण्ड देकर ही छोड़ते हैं। राक्षस-संस्कृति हिंसा-परायण है, आर्य-संस्कृति यज्ञ-परायण। वानर-संस्कृति का रुझान आर्य-संस्कृति की ओर है पर आर्यजनों की उपेक्षा के कारण वे नैतिकता के उच्च आदर्शों तक नहीं पहुंच सके। राम ने पहली बार उनकी ओर हाथ बढ़ाया तो वे सहर्ष राक्षसों से लड़ने के लिए आर्यों के साथ हो गए थे। आज भी तो वन्य जातियां आर्यों की उपेक्षा की शिकार हैं। वे आर्यजनों के स्नेह की आकांक्षी हैं, पर आर्यजन उधर ध्यान न देकर राक्षसों की ओर अग्रसर हैं। राक्षस-संस्कृति पर विजय पाने के लिए आर्यों और वन्य जातियों का संगम आवश्यक है। पहल आर्यों को ही करनी होगी। श्रीराम ने मार्ग दिखाया है। उसी पर चलकर आर्य-संस्कृति की विजय होगी। उसी विजयोन्मुख आर्य-संस्कृति के प्रतीक हैं श्रीराम। –चयनिका से साभार

'आर्यावर्त्त' देश इस भूमि का नाम इसलिए है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्रा नदी है। इन चारों के बीच में जितना प्रदेश है उसको 'आर्यावर्त्त' कहते हैं और जो इसमें सदा रहते हैं उनको आर्य कहते हैं।

If you do not step forward You will remain in the same place.

टंकारा समाचार **अक्टूबर 2023**

Delhi Postal R.No. DL (ND)-11/6037/2021-22-23

अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसेंस नं0 U(C) 231/2023

Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06 on 1/2-10-2023

R.N.I. No 68339/98 प्रकाशन तिथि: 23.09.2023

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक–अजय सहगल द्वारा मयंक प्रिंटर्स, 2199/63, नाईवाला, करोल बाग, नई दिल्ली–5 दूरभाष : 41548503 से छपवाकर कार्यालय महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा, आर्य समाज (अनारकली), मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–1 दूरभाष : 23360059, 23362110 से प्रकाशित। संपादक : अजय